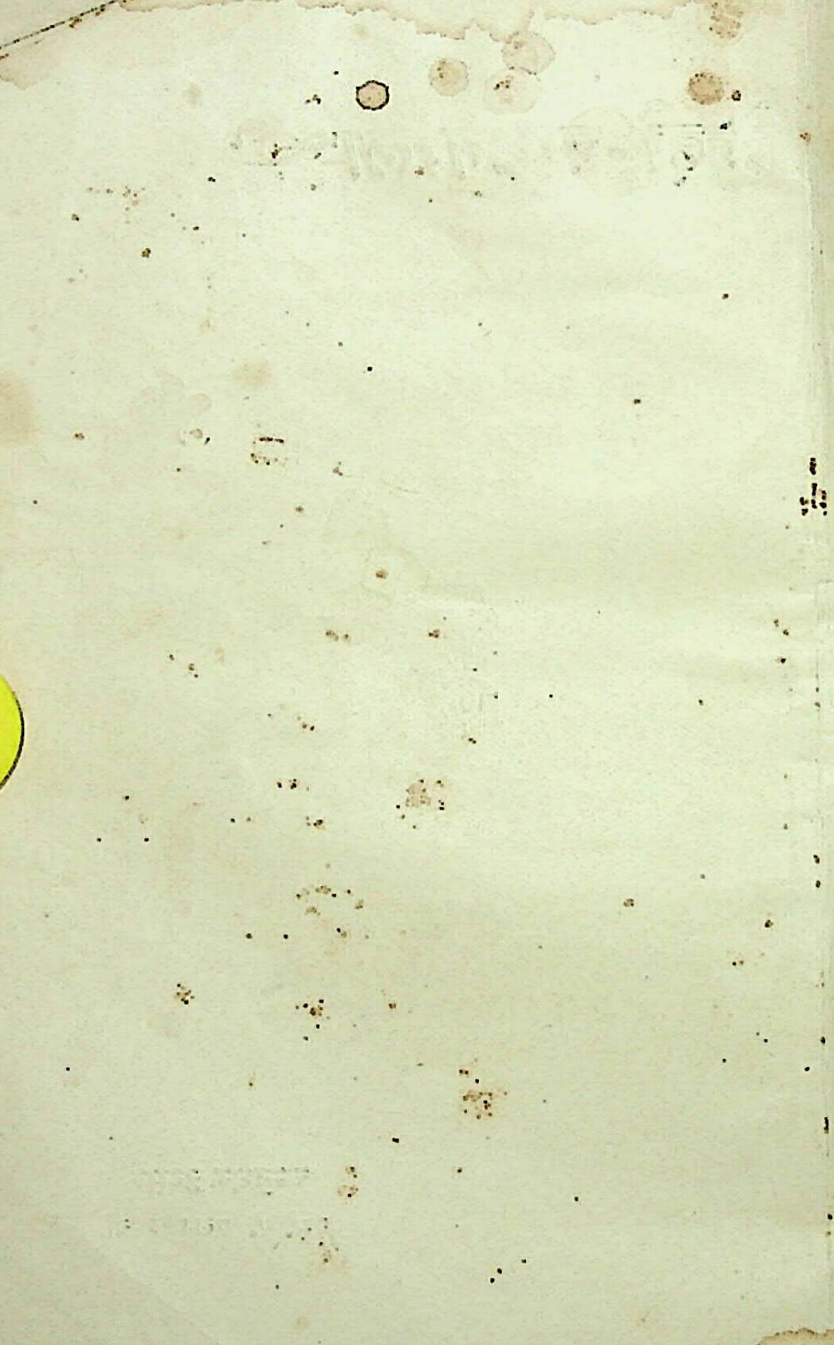
हिन्दी-पाठमाला





चन्द्रधर इस्सर

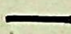
एम. ए., एल्-एल्. बी.



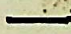
हिन्दी-पाठमाला



संस्कृत प्रथमा परीक्षार्थियों के लिये
संयुक्त-प्रान्तीय संस्कृत-शिक्षाबोर्ड
द्वारा स्वीकृत



सम्पादक
पं० चन्द्रधर इस्सर एम. ए., एल्-एल्. बी.



प्रकाशक
नन्दकिशोर ऐंड ब्रदर्स,
पुस्तक - प्रकाशक एवं विक्रेता
चौक, बनारस।

षष्ठावृत्ति २०००] १९४५ मूल्य ।≋)

प्रकाशक
नन्दकिशोर भार्गव,
प्रोप्राइटर, नन्दकिशोर ऐंड ब्रदर्स,
चौक, बनारस।

मुद्रक
ह० मा० सप्रे,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. ईश-वन्दना	संकलित ...	१
२. शिष्टाचार	श्री श्रीराम वाजपेयी	२
३. वर्षा-वर्णन	श्री गोस्वामी तुलसीदास	५
४. स्वामी शंकराचार्य	श्री शम्भूदयाल सक्सेना	६
५. भीष्म-प्रतिज्ञा	श्री पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	१०
६. भ्रातृ-भक्त भरत	श्री पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'	१४
७. महाराज शिवाजी	श्री शम्भूदयाल सक्सेना	१९
८. शरद्-वर्णन	श्री गोस्वामी तुलसीदास	२३
९. महाकवि कालिदास	... ...	२५
१०. स्वास्थ्य-रक्षा	श्री लेफ्टिनेन्ट शतानन्द शर्मा	२८
११. परीक्षा	श्री प्रेमचन्द्रजी...	३५
१२. गोस्वामी तुलसीदास	श्री बा० श्यामसुंदरदास बी.ए.	४१
१३. पुरुषार्थ	संकलित ...	४८
१४. हमारा देश	श्री नरोत्तमदास स्वामी	५०
१५. महाराणा प्रताप और मानसिंह	... ...	५८
१६. ब्रह्मचर्य	... ...	६३
१७. वाराणसी	श्री पं० आशुकरण गोस्वामी	६७
१८. भगवान् बुद्ध	श्री पं० रक्षपाल शर्मा	७३
१९. सदाचार	श्री पं० विद्याधर शास्त्री	८०
२०. प्राचीनभारत की एक झलक	... ...	८५





हिन्दी-पाठमाला

१—ईश-वन्दना

(१)

हे नाथ ! हे प्रभु ! महा महिमा तुम्हारी,
वाणी नहीं कह सुना सकती हमारी।
सौ वर्ष भी यदि सदा तव कीर्त्ति गावें,
तो भी कभी न उसके हम पार जावें॥

(२)

पृथ्वी, पहाड़, नद, पेड़, समुद्र सारे,
हैं ये समस्त जगदीश ! दिये तुम्हारे।
हैं ईश ! आप यदि सूर्य हमें न देते,
तो जीव-जन्तु जग में न कदापि जीते॥

(३)

ये जो अनेक फल हैं जग में दिखाते,
खाते नहीं हम कभी जिनको अघाते।
देते न जो तुम हमें जगदीश आँख,
पाते उन्हें न, करते यदि यत्न लाख॥

(४)

हे हे दयामय प्रभो; कर जोड़ते हैं,
सारी कुचाल अब से हम छोड़ते हैं।

जो भूल-चूक परमेश्वर हो हमारी,
कीजे क्षमा शरण में हम हैं तुम्हारी ॥

प्रश्न

१—अपनी भाषा में ईश्वर की महिमा का वर्णन करो।

२—शिष्टाचार

सच पूछो तो किसी मनुष्य की विद्या, बुद्धि और योग्यता का पता उसकी बातचीत से ही चल जाता है, इसलिये हमें बड़ी सावधानी से बातचीत करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जीवन की सफलता और असफलता बहुत कुछ बातचीत के ढंग पर भी निर्भर है। एक मीठा बोलनेवाले मनुष्य से लोग बिना कारण ही प्रेम और कड़वा बोलनेवाले से घृणा करने लगते हैं। अतः हमें शिष्टाचार की छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

किसी मनुष्य की सब से अच्छी पहचान उस व्यवहार से हो सकती है जो वह अपने नौकर-चाकरों, अधीन और दीन-दुखियों के साथ करता है। वास्तव में क्षुद्र प्रकृति के लोग ही दूसरों से असभ्य व्यवहार किया करते हैं। उत्कृष्ट विचारों के पुरुष छोटे से छोटे मनुष्य के साथ भी नम्रता का व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि लोगों की दृष्टि में उनका मान दिन-दिन बढ़ने लगता है। इसके विपरीत जो मनुष्य बिना कारण ही दूसरों से असभ्य व्यवहार करते हैं, उन्हें दूसरे लोग असभ्य और फूहड़ के नाम से पुकारने लगते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि शिष्टाचार से संसार के कामों में एक निराला सौन्दर्य और सरलता आ जाती है, मनुष्य अधिक उपयोगी बन जाता है और

यही शिष्टाचार मनुष्य के गुणों में 'सोने में सुगन्ध' का सा काम देता है। इसलिये शिष्टाचार-सम्बन्धी कुछ मोटी-मोटी बातों को लिख देना उपयुक्त सिद्ध होगा।

बातचीत करते समय 'श्रीमान्', 'आप' और 'तुम' शब्द का उचित प्रयोग करने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। पदवी तथा योग्यता में अपने से बहुत बड़े आदमी के लिये 'श्रीमान्' और साधारणतया हर एक बड़े आदमी और बराबरवालों के लिये 'आप', बराबरवाले बड़े हां घनिष्ठ मित्रों और छोटे लोगों तथा बालकों के लिये 'तुम' शब्दों का प्रयोग करना शिष्टाचार के अनुकूल है। किसी प्रश्न का उत्तर देते समय केवल 'हाँ' या 'नहीं' कहना शिष्टाचार के विरुद्ध है। हमेशा 'जी हाँ' या 'जी नहीं' कहकर उत्तर देना चाहिये। यदि किसी आदमी का नाम या रहने का स्थान पूछना हो तो 'आपका शुभ नाम', 'आपका शुभ स्थान' वाक्यांशों का प्रयोग करना चाहिये।

बातचीत करते समय मनुष्य को अपनी ही बातों की झड़ी न लगा देनी चाहिये; वरन् दूसरे लोगों को भी बोलने का अवसर देना चाहिये; ऐसा न करने से दूसरे लोग उकताकर पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त बातचीत में दूसरे का वेतन, वंश-व्यवसाय इत्यादि ऐसी बातें जिनके बताने में किसी मनुष्य को हिचकिचाहट हो सकती है, पूछने का आग्रह भी न करना चाहिये।

जहाँ कुछ लोगों का जमघट हो, वहाँ व्यर्थ में अपनी योग्यता दिखाने का उद्योग करना अभिमान समझा जाता है। हमने यहाँ तक देखा है कि बहुत से लोग केवल अपनी योग्यता दिखाने के लिये ही अशुद्ध शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। उनकी इस अनूठी योग्यता पर बैठे हुए लोग मन ही मन हँसते

हैं और कभी-कभी तो ऐसे मनुष्य को मूर्ख जताने का उद्योग करने लगते हैं। यदि लोग बहुत ही आग्रह करें तो अपनी योग्यता के अनुसार कुछ कहने में लज्जा भी न करनी चाहिये; परन्तु ऐसे अवसर पर बातचीत का विषय चुनने में बड़ी सावधानी से काम लेने को आवश्यकता है। बालकों और नवयुवकों के सामने खेल और वीरता की बातों को छोड़कर वैराग्य की बातें करना और बूढ़ों के सम्मुख शृङ्गार को बातें करना मूर्खता नहीं तो क्या बुद्धिमानी है?

दो मनुष्यों की बात काटकर बीच में ही बोल उठना, रास्ते में दूसरे मनुष्य के हाथ में हाथ डालकर या कन्धे पर हाथ रखकर चलना, किसी मनुष्य से चलते चलते पीछे से बातें करना, बड़ों के सम्मुख पान चबाकर, खुले बटन या कपड़े सँभालकर न जाना, ढीले-ढाले खड़े होना, पाँव पसारकर बैठना अथवा किये गये प्रश्न का उत्तर न देकर चुपचाप खड़े रहना आदि सभी बातें शिष्टाचार के विरुद्ध हैं।

बालकों को बचपन से ही शिष्टाचार-सम्बन्धी बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये, जिससे वे बचपन में सदाचारी बालक और यौवन में सुयोग्य नागरिक बन सकें।

प्रश्न

१—शिष्टाचार से क्या तात्पर्य है?

२—अपने से बड़े आदमी के लिये कैसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिये?

३—दो आदमियों के बीच में बोलना क्यों अच्छा नहीं समझा जाता?

३—वर्षा-वर्णन

(रामायण से)

वर्षाकाल मेघ नभ छाये ;
गरजत लागत परम सुहाये ।
दामिनि दमक रही घन माहीं ;
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
वर्षहिं जलद भूमि नियराये ;
यथा नवहिं बुध विद्या पाये ।
बूँद अघात सहैं गिरि कैसे ;
खल के बचन सन्त सह जैसे ॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई ;
जस थोरे धन खल बौराई ।
भूमि परत भा डाबर पानी ;
जिमि जीवहि माया लपटानी ॥
सिमिट सिमिट जल भरे तलावा;
जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा ।
सरिता-जल जलनिधि महँ जाई ;
होइ अचल जिमि जन हरि पाई ॥
दादुर-धुनि चहुँओर सुहाई ;
वेद पढ़ैं जिमि बटु-समुदाई ।
नव पल्लव भे विटप अनेका ;
साधु के मन जस होय विवेका ॥
अर्क, जवास पात बिनु भयऊ ;
जिमि सुराज्य खल-उद्यम गयऊ ।

खोजत पन्थ मिलै नहिं धूरी ;
करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥
सस-सम्पन्न सोह महि कैसी ;
उपकारी की सम्पति जैसी ।
निशि-तम घन खद्योत विराजा ;
जनु दम्भिन कर जुरा समाजा ॥
कृषि निरावहि चतुर किसाना ;
जिमि बुध तजहिं मोह-मद-माना ।
विविध-जन्तु सकुल महि भ्राजा ;
बढ़े प्रजा जिमि पाय सुराजा ॥
कबहुँ दिवस महँ निविड़ तम, कबहुँक प्रगट पतङ्ग ।
उपजै बिनसै ज्ञान जिमि, पाइ सुसङ्ग कुसङ्ग ॥

प्रश्न

१—अपनी सरल भाषा में वर्षा-ऋतु पर एक निबन्ध लिखो ।

२—"यथा नवहि बुध विद्या पाये"--इस आशय का संस्कृत का कोई श्लोक बनाओ ।

३--क्रोध से धर्म कैसे दूर हो जाता है ?

४—स्वामी शंकराचार्य

कई सौ वर्ष हुए दक्षिण देश में एक ब्राह्मण रहते थे । वह बड़े पण्डित और ज्ञानी थे । उनकी स्त्री का नाम कामाक्षी था । कामाक्षी भी पति की तरह पण्डिता थीं । दोनों का जीवन बड़े सुख से बीत रहा था ।

बहुत दिन बीत जाने पर भी उन्हें कोई सन्तान न हुई ।

सन्तान के लिये दोनों शिव का व्रत करने लगे। व्रत का फल मिला और एक लड़का पैदा हुआ। भगवान् शंकर की दया से उत्पन्न होने के कारण लड़के का नाम शंकर रखा गया।

शंकर की बुद्धि बड़ी तेज थी। उन्होंने आठ साल की ही अवस्था में बड़े-बड़े विषयों पर विचार करना सीख लिया। इसी समय इनके पिता का देहान्त हो गया। पिता के मरने से बालक शंकर के चित्त पर बड़ी चोट लगी। वे संसार में खिन्न रहने लगे। कभी-कभी घर से गाँव के बाहर चले जाते और घंटों संसार पर मन ही मन विचार किया करते थे। वह अपने विचारों में ऐसे भूल जाते कि अपने शरीर तक का ध्यान नहीं रह जाता था।

इससे कामाक्षी को बड़ी चिन्ता हुई। वह शंकर को भोग-विलास में फँसाने का यत्न करने लगी; पर शंकर के चित्त पर कुछ भी असर न हुआ। फिर भी वह माता की आज्ञा के बिना घर न छोड़ना चाहते थे।

एक दिन शंकर को माता के साथ एक दूसरे गाँव में जाना पड़ा। रास्ते में एक नदी मिली। नदी में पानी कम था। माँ-बेटे नदी में उतर पड़े; पर जब बीच में पहुँचे तो नदी का पानी बढ़ आया। दोनों डूबने लगे। इसी समय शंकर ने यह देववाणी सुनी—"यदि शंकर संन्यासी हो जायँ तो नदी का पानी घट सकता है।" शंकर ने देववाणी माता को सुना दी। माता रोने लगी। सामने मौत के सिवाय और कोई उपाय न देखकर माता ने उन्हें संन्यास लेने की आज्ञा दे दी।

शंकर घर से अलग होकर गोविंदपाद के आश्रम में गये। आश्रम में रखने से पहले गोविंदपाद ने उनसे कई प्रश्न पूछे। शंकर ने उनके प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें अचंभे में डाल दिया।

गोविंदपाद ने उन्हें अपने पास रख लिया। इनके आश्रम में रहकर वह योग और कर्म की शिक्षा पाने लगे।

थोड़े ही दिनों में शंकर पूरे पंडित हो गये। इनकी पंडिताई को देखकर इनके गुरु को भी आश्चर्य होने लगा। इनका योग ध्यान भी बढ़ा-चढ़ा था। जब यह ध्यान लगाकर बैठते तो इन्हें किसी की सुध न रह जाती थी।

विद्या और योग के पूरे पंडित बनकर शंकर ने संन्यास लिया और स्वामी शंकराचार्य कहलाने लगे। उस समय सारे भारत में बौद्ध धर्म की तूती बोल रही थी। इनके गुरु ने इन्हें आज्ञा दी कि देश में घूम घूमकर अपने ज्ञान का प्रचार करो और बौद्धधर्म की जगह पर सनातन वैदिक धर्म की धूम मचा दो।

गुरु की आज्ञा मानकर स्वामी शंकराचार्य निकल पड़े। उन्होंने सारे देश में वैदिक धर्म का डंका बजा दिया। बौद्ध पंडित घबराये। जगह जगह इनसे बौद्ध पंडितों का वादविवाद (शास्त्रार्थ) हुआ। पर कोई इनके सामने न टिका। यह जहाँ-जहाँ जाते, सबको मुँह की खानी पड़ती। सारे देश में इनके नाम का डंका बजने लगा।

सारे भारतवर्ष में सनातनधर्म का झंडा फहराते हुए माहिष्मती नगरी में पहुँचे। इस नगरी में मंडनमिश्र नाम के एक बड़े पंडित रहते थे। जब शंकराचार्य उनके पास पहुँचे तब वे इनके मुख के तेज को देखकर अचरज में पड़ गये। फिर दोनों में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। यह तय हुआ कि जो हारे वह जीतनेवाले का चेला बन जाय। निर्णय करने के लिये मंडन-मिश्र की स्त्री भारती पंच बनी। यह भी बड़ी पंडिता थी। इसी से पता चलता है कि भारत में उस समय स्त्री-शिक्षा का कैसा प्रचार था।

शास्त्रार्थ होने लगा। मंडनमिश्र हार गये। तब भारती ने स्वामी शंकर से कहा—"जब तक आप मुझे न हरा लें तब तक आपकी जीत नहीं मानी जा सकती; क्योंकि स्त्री पति का अर्धाङ्ग होती है।" शंकराचार्य शास्त्रार्थ करने लगे। पर भारती के प्रश्नों का उत्तर उस समय न दे सके। उन्होंने एक वर्ष का समय माँगा और एक वर्ष के बाद उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। फिर क्या था, मंडन और मंडन की स्त्री दोनों इनके चेले बन गये।

स्वामी शंकराचार्य ने थोड़े ही दिनों में चारों ओर भारत में वैदिक धर्म का झंडा खड़ा कर दिया। इससे वाम-मार्गी और बौद्ध धर्मवाले इनके विरोधी हो गये। शंकराचार्य ने इनका उत्तर देने और वैदिक धर्म के प्रचार के लिये चार मठ स्थापित किये। इनके चारों मठ इस समय भी मौजूद हैं। बदरिकाश्रम में जोशीमठ, जगन्नाथपुरी में गोवर्धनमठ, द्वारिका में शारदामठ और दक्षिण में शृङ्गेरीमठ तथा काञ्ची नगरी में कामकोटि पीठ में वे स्वयं रहे। ये मठ आज भी इनके नाम की महिमा प्रकट कर रहे हैं। इन मठों का देश में बड़ा आदर-मान है। इन मठों के अधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य कहलाते हैं।

शंकर स्वामी बदरिकाश्रम गये। वहाँ बत्तीस वर्ष की अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया।

प्रश्न

१—अपनी भाषा में स्वामी शंकराचार्य की जीवनी लिखो।

२—स्वामी शंकराचार्य को वैराग्य क्यों हुआ?

३—उन्होंने कौन से ऐसे बड़े कार्य किये हैं, जिनसे उनका नाम विख्यात है?

४—वैदिक सनातनधर्म किसको कहते हैं?

५—भीष्म-प्रतिज्ञा

एक दिन राजा शान्तनु यमुना के किनारे घूम रहे थे कि अचानक एक अद्भुत सुगन्ध आयी। ऐसी सुगन्ध राजा ने इसके पहले कभी नहीं पायी थी। वे सोचने लगे कि यह मनोहर सुगन्ध कहाँ से आ रही है। खोज करने पर उन्हें मालूम हुआ कि यह देवरूप-धारिणी एक धीवर की कन्या के बदन की सुगन्ध है। इस पर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस मल्लाह की कन्या से पूछा—

हे सुन्दरी! तुम कौन हो? किसलिये तुम यहाँ आयी हो; यहाँ पर तुम क्या करती हो?

कन्या ने उत्तर दिया—

महाराज! मैं एक धीवर की कन्या हूँ। मेरा नाम सत्य-वती है। मैं पिता की आज्ञा से इस घाट पर नाव चलाया करती हूँ।

इस कन्या के अद्भुत रूप और आश्चर्यकारक सुवास पर राजा शान्तनु मोहित हो गये। उसके साथ विवाह करने की उन्हें प्रबल इच्छा हुई। इससे वे उसके पिता के पास गये और अपने मन की बात उससे कही।

धीवर बोला—हे नरनाथ! हे महाराज! कन्या हुई है तो उसका विवाह करना ही पड़ेगा। आप राजा होकर भी उसके पाने की इच्छा रखते हैं, यह मेरे लिये बड़े आनन्द की बात है। इससे अधिक सन्तोष और सुख की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है? परन्तु मेरे मन में एक अभिलाषा है, उसे पूरा करने के लिये आपको 'हाँ' करना होगा। इस कन्या का विवाह आपके साथ होने पर इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी को राज्य का अधिकारी आपको बनाना होगा। आपको यह प्रण

करना होगा कि आपके पीछे आपका राज्य सत्यवती के ही पुत्र को मिलेगा और किसी को नहीं।

राजा शान्तनु अपने पुत्र देवव्रत को इतना प्यार करते थे कि धीवर की इस बात को स्वीकार करने में समर्थ न हुए। बहुत दुःखित होकर वे अपनी राजधानी हस्तिनापुर को लौट आये; परन्तु सत्यवती उन्हें नहीं भूली। उसके लिये वे बहुत उदास रहा करते थे।

पिता की यह दशा देखकर महात्मा देवव्रत को बड़ी चिन्ता हुई। मन्त्री से पिता के दुःख का सारा हाल सुनकर देवव्रत ने उनकी इच्छा पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया और उसी क्षण वे धीवर के पास पहुँचे।

धीवर ने राजकुमार देवव्रत से आने का कारण पूछा। उन्होंने सब बातें उसे कह सुनायीं। धीवर ने कुमार को बड़े आदर से आसन पर बैठाया और उनके साथ जितने राजपुरुष आये थे, सब के सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

हे राजकुलदीपक! आप शस्त्र धारण करनेवालों में सब से श्रेष्ठ और राजा शान्तनु के इकलौते पुत्र हैं। सब बातें आप के ही हाथ में हैं। इससे मैं सारी कथा आपसे कहता हूँ, सुनिये। देखिये, आपके साथ सम्बन्ध छोड़ने की इच्छा मैं तो क्या, स्वयं इन्द्र भी नहीं कर सकते। महर्षि पराशर ने इस कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा बार बार मुझसे प्रकट की है। परन्तु राजा के साथ सम्बन्ध करना ही मैंने इसके लिये अच्छा समझा। इससे मैंने महर्षि पराशर की बात नहीं मानी। परन्तु हे राजकुमार! इसके साथ विवाह करने से इसकी सन्तान के कारण आपके राज्य में घोर शत्रुता और विद्रोह होने का डर है। जिसके आप सौतेले भाई होंगे—जिसके साथ आपका

वैरभाव होगा—उसकी क्या कभी रक्षा हो सकती है ? उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता। इस विवाह में यही एक दोष है, और कुछ नहीं। इस दशा में मैं कन्यादान कर सकता हूँ या नहीं, इसका विचार आप ही कर दीजिये।

महात्मा देवव्रत धीवर का मतलब समझ गये। उन्हें अपने सुख की अपेक्षा पिता के ही सुख का अधिक ध्यान था अतएव अपने स्वार्थ की—अपने सुख की—उन्होंने कुछ भी परवाह न की। वे उसे छोड़ने के लिये तत्काल तैयार हो गये। उन्होंने कहा—

हे धीवर-श्रेष्ठ ! डर का कोई कारण नहीं। तुम बिलकुल न डरो, हमने तुम्हारे मन की बात जान ली है। हमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण करना सब तरह स्वीकार है। तुम्हारी कन्या को जो पुत्र हो वही इस राज्य का स्वामी होगा, उसी को यह राज्य मिलेगा।

यह सुनकर धीवर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—

हे शत्रुओं के नाश करनेवाले ! यदि आप मुझपर क्रोध न करें तो मैं और भी एक बात आपसे कहूँ। संसार में सब लोग इस बात को जानते हैं कि आप सत्यवादी हैं, सदा सत्य ही बोलते हैं। जब आपने सत्यवती के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा की है तब उस विषय में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु यदि आगे किसी समय आपका कोई वंशज आपकी प्रतिज्ञा को न माने और उसके विपरीत काम करे तो उसका क्या उपाय होगा ?

तब महात्मा देवव्रत ने पिता के सुख को सर्वोपरि समझा, वहाँ पर जितने क्षत्रिय उपस्थित थे सब को सुनाकर ये वचन कहे—

हे धीवरराज ! हमारी सत्य-प्रतिज्ञा सुनो। हम जो सत्य-

व्रत करने जाते हैं, उसे श्रवण करो। हम पहले ही राज्य के अधिकार से हाथ खींच चुके हैं। हम पहले ही कह दिया है कि हम सत्यवती के पुत्र को राजा बनावेंगे। अब हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम विवाह भी न करेंगे। आज से जन्म भर हम ब्रह्मचर्य धारण करेंगे। इससे सत्यवती के पुत्र को राज्याधिकार से हटाने का कुछ भी डर न रह जायगा। उसे राज्य-प्राप्त करने में कोई बाधा न आ सकेगी।

देवव्रत ने अपने स्वार्थ पर इस तरह पानी फेर दिया। उन्होंने उदारता की हद कर दी। उन्होंने राज-पाट भी छोड़ दिया और जन्म भर अविवाहित रहने का प्रण भी किया। उनकी इस विकट प्रतिज्ञा को सुनकर सब लोग धन्य! धन्य! कहने लगे और स्वर्ग से देवता फूल बरसाने लगे। ऐसा भीष्म प्रण करने के कारण उस समय से सब लोग देवव्रत को 'भीष्म' कहने लगे। तभी से उनका नाम भीष्म पड़ा।

उस धीवर की अभिलाषा पूर्ण हुई। जो बात वह चाहता था, वह हो गयी। इससे उसे बड़ा आनन्द हुआ। शान्तनु के साथ ही अपनी कन्या का विवाह करना उसने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया।

इसके बाद राजा शान्तनु के साथ सत्यवती का विवाह हो गया और उन्होंने अपने सत्यवादी पुत्र देवव्रत की भीषण प्रतिज्ञा से प्रसन्न होकर पुत्र को यह वरदान दिया कि तुम्हें इच्छा-मृत्यु प्राप्त हो—इच्छा से ही तुम्हारी मृत्यु हो; अर्थात् यदि तुम अपने मन से न मरना चाहो तो मृत्यु का तुम पर कुछ भी जोर न चले। अन्त में ऐसा ही हुआ। धर्मात्माओं की बातें व्यर्थ नहीं होतीं। भीष्म ने अपना प्रण निभाया और महाभारत के बाद अपनी इच्छा से शरीर छोड़ा।

—महावीर प्रसाद द्विवेदी

प्रश्न

१—भीष्म के जीवन से क्या शिक्षा मिलती है ?

२—इच्छा-मृत्यु किसको कहते हैं ?

३—देवव्रत का नाम 'भीष्म' क्यों पड़ा ? उनकी प्रतिज्ञा में क्या उदारता थी ?

४—भीष्म की जीवनी संक्षेप में लिखो।

६—भ्रातृ-भक्त भरत

रामादपि हि तं मन्ये धर्म्मतो बलवत्तरम्

भरत रामचन्द्रजी से अत्यन्त प्रेम करते थे। वह उन्हें भाई नहीं; बल्कि पिता के समान पूज्य मानते और वैसा ही उनके साथ बर्ताव भी करते थे। महाराज दशरथ का स्वर्गवास होने पर गुरु वसिष्ठजी तथा मन्त्रियों ने भरतजी को ननिहाल से बुलाया। जब से अयोध्या में अनर्थों और उत्पातों का आरम्भ हुआ तब से ननिहाल में भरतजी भी नित्य बुरे-बुरे स्वप्न देखते थे। दिन में भी उन्हें अनेक अमंगल-सूचक अशुभ शकुन दिखाई देते, जिनके कारण भरतजी अत्यधिक चिन्तित रहते थे। इन दुःस्वप्नों की शान्ति के लिये भरत ने अनेक दान-पुण्य और पूजा-पाठ की व्यवस्था की; परन्तु फिर भी उनके चित्त को सन्तोष न हुआ।

भरतजी इन्हीं चिन्ताओं में निमग्न बैठे थे कि अयोध्या से गुरु वसिष्ठजी का भेजा हुआ दूत उनके पास आ पहुँचा। भरत ने दूत से अनेक बातें पूछी; परन्तु उसने केवल इतना ही कहा कि आपको गुरुजी ने शीघ्र बुलाया है। गुरुजी का सन्देश पाते ही भरतजी तुरन्त अयोध्या को चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने

पुरी तथा पुरजनों की जो अवस्था देखी, उससे उन्हें किसी भारी असंगल की आशंका होने लगी। ज्यों-त्यों कर भरत राजमहल में पहुँचे। वहाँ सर्वप्रथम उनको कैकेयी से भेंट हुई। कैकेयी ने अपने पीहर के कुशल-समाचार पूछे, जिनका भरतजी ने उचित उत्तर दिया। फिर भरतजी ने अपने परिवार का कुशल-क्षेम पूछते हुए प्रश्न किया कि महाराज और रामचन्द्रजी कहाँ हैं ?

अपने प्रश्न के उत्तर में भरतजी ने सीता और लक्ष्मण सहित राम के बन जाने और उनके वियोग से महाराज का प्राण त्यागने की बात सुनी तो वह एक साथ भौचक्के से रह गये। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों आकाश से भूमि पर आ गिरे हों। यह संवाद सुनकर भरतजी के दुःख और शोक का ठिकाना न रहा। हा पिता ! हा पिता !! कहकर वह पृथ्वी पर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। थोड़ी देर में जब भरतजी की मूर्छा दूर हुई तब वह बिलख-बिलखकर रोने और कहने लगे—"हा पिताजी, मैं अभागा अन्त समय में आपके दर्शन भी न कर सका, आप मुझे अपने हाथों भाई रामचन्द्रजी को भी नहीं सौंप गये !" इस प्रकार बहुत रो-धोकर गुरुजनों के समझाने पर भरतजी कुछ शान्त हुए।

उधर कैकेयी बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अपनी करतूत भरत को सुनाने लगी। वह बोली—"पुत्र, अनर्थ तो बड़ा भारी होनेवाला था; परन्तु मन्थरा की सहायता से मैंने सब बात सँभाल ली है। मैं किसी तरह तुम्हारे लिये यह राजसिंहासन सुरक्षित रख सकी हूँ। इस बीच में महाराज स्वर्ग सिधार गये, केवल यही थोड़ा-सा अकाज हो गया, शेष सब ठीक है। अब तुम निश्चिन्त होकर राज्य करो।" यद्यपि भरतजी कैकयी के ही गर्भ से उत्पन्न हुए थे, परन्तु उनकी तथा कैकेयी की प्रकृति में आकाश-पाताल का

अन्तर था। माता की बातें उन्हें विष के बुझे बाण के समान लगीं। इस समय उन्हें पिताजी की मृत्यु का इतना दुःख न था, जितना रामचन्द्रजी के वन जाने का। उन्होंने उस कुटिल करतूत के लिये अपनी माता को अनेक प्रकार से धिक्कारा और मंथरा की लात घूसों से खबर ली।

भरतजी को अपनी माता पर क्रोध तो बहुत आ रहा था; परन्तु वे उससे कुछ कह नहीं सकते थे। उस समय उनकी दशा साँप-छछूंदर की सी हो रही थी। वह बारबार अपने को ही धिक्कारते थे। भरतजी विकल होकर माता कौशल्या से कहने लगे—"हा माता, इन सब अनर्थों का मूल मैं ही हूँ। सर्वप्रिय रामचन्द्र का विरोध करनेवाले हृदय से विधाता ने मुझे उत्पन्न किया है, इसलिए मेरे समान पापी जगत में दूसरा कौन हो सकता है! हे माता, मुझ अभागे के कारण ही तुम्हारी यह दशा हुई और मेरे ही लिये भाई रामचन्द्र वन गये हैं। हा! पिताजी की मृत्यु का कारण भी मैं अधम ही हूँ। हे भगवन्! अब मैं संसार के आगे क्या मुँह लेकर जाऊँगा! लोग देखते ही मेरी ओर उँगली उठावेंगे और कहेंगे कि यह वही भरत है जिसके लिये कैकेयी ने राम को वनवास दिलाया। हा! अब प्रजा मुझे बन्धुद्रोही और पितृघातक कहकर पुकारेगी। हे माता, यद्यपि यह सब दुर्घटना मेरे ही कारण हुई है, फिर भी मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी इसमें तनिक भी सम्मति नहीं थी। हे जननी, जो पाप माता-पिता और पुत्र का वध करने से होता है, जो पाप दूसरों की स्त्री तथा धन अपहरण करने से होता है—यदि मुझे कैकेयी की काली करतूतों का कुछ भी पता हो तो वे सब पातक मुझे लगें।"

भरतजी को इस प्रकार विलाप करते और शपथ खाते देख

कौशल्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा बहुत समझाया। माता कौशल्या भरतजी के आँसू पोंछती हुई कहने लगी—"पुत्र ! यह सब कुछ भाग्य और भविष्यवश ही हुआ है, इसमें किसी का दोष नहीं। अब तुम धीरज धरकर महाराज का आदेश पालन करो। हे वत्स, मैं जानती हूँ कि रामजी तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। राम भी तुम से बड़ा स्नेह करते हैं। चाहे चन्द्रमा विष बरसाने लगे और मेघमाला से अङ्गारे गिरने लगें; पर तुम कभी राम के प्रतिकूल नहीं हो सकते।" इसी समय वशिष्ठ आदि मुनि तथा मन्त्री लोग भी भरतजी के पास आये और उन्होंने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया।

फिर भरतजी ने पिता की विधिपूर्वक अन्त्येष्टि क्रिया की। सब कामों से निवृत्त हो जाने पर वसिष्ठजी, मन्त्रियों और दूसरे वृद्धजनों ने भरतजी से राजसिंहासन पर बैठकर राजकाज करने का आग्रह किया; परन्तु भरतजी उसके लिये तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा—"यह सिंहासन रामचन्द्रजी का है, उनका एक तुच्छ सेवक होकर मैं इस पर कैसे बैठ सकता हूँ ! मेरा तो विचार है कि आप सब लोगों सहित मैं रामचन्द्रजी को मनाने और लौटाने को चलूँ। हम लोगों की प्रार्थना पर यदि वे लौट आये तो बड़ा अच्छा होगा, नहीं तो मैं भी चौदह वर्ष तक वन ही में रहूँगा। सीताजी और राम-लक्ष्मण तो वल्कल-वस्त्र धारण करें, कन्द-मूल-फल खायँ, वन-वन विचरें और मैं राजसुख भोगूँ, यह कैसे हो सकता है !"

दूसरे ही दिन भरतजी पुरजन तथा परिजनों सहित रामचन्द्रजी को मनाने के लिये चल दिये। भरतजी ने प्रण किया कि जब तक रामचन्द्रजी के दर्शन न कर लूँगा, अन्नजल ग्रहण नहीं करूँगा। साथ ही उन्होंने राजोचित वस्त्र उतार कर रामचंद्र

के से वल्कल- वसन धारण कर लिये। इस प्रकार नंगे पैरों पैदल चलकर भरतजी चित्रकूट पहुँचे। वहाँ जब लक्ष्मण ने सेना सहित भरतजी के आने की बात सुनी तो उन्हें बड़ा सन्देह होने लगा। परन्तु रामचन्द्र ने लक्ष्मण को समझाया कि भले ही सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम से उदय होने लगे; परन्तु हमारे साथ भरत का दुर्भाव कदापि नहीं हो सकता।

रामचन्द्रजी लक्ष्मण को समझा ही रहे थे कि इतने में भरतजी आ पहुँचे और आते ही रामचन्द्रजी के पैरों पर गिर पड़े। राम ने भरत को हृदय से लगा लिया। भरतजी ने रोते-रोते पिता के स्वर्गवास की बात सुनाई, जिसे सुनकर रामचन्द्र को भी अत्यन्त दुःख हुआ। परन्तु फिर उन्होंने भरतजी तथा माताओं और अन्य पुरवासियों को समझा-बुझाकर शान्त किया। भरत ने रामचन्द्र से अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना की; परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार न किया। जब भरतजी रामचन्द्र को लौटा ले चलने में सर्वथा असमर्थ हुए तब उन्होंने भूखों रहकर वहीं प्राण दे देने का निश्चय किया। अब तो राम बड़े द्वैविध्य में पड़े। यदि अयोध्या लौटते हैं तो पिता की आज्ञा भंग होती है और नहीं लौटते तो भाई के प्राणनाश का भय है। करें तो क्या करें!

अन्त में बहुत सोच-विचार के बाद रामचन्द्रजी ने निश्चित किया कि मैं तो चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण हुए बिना लौट नहीं सकता। हाँ, आप मेरी खड़ाऊँ ले जाकर राजसिंहासन पर स्थापित कर लें। भरत रामचन्द्रजी को इस बात से सहमत हो गये और आदरपूर्वक उनकी पादुका सिर पर रखकर अयोध्या लौट आये।

भरतजी लौट तो आये; परन्तु उन्होंने अयोध्या नगरी में रहना स्वीकार न किया। वे रामचन्द्रजी की खड़ाऊँ राजसिंहासन

पर प्रतिष्ठित कर शृङ्गवेरपुर नामक स्थान में आश्रम बनाकर रहने लगे। भरतजी चौदह वर्ष तक वल्कल वस्त्र पहनते, भूमि पर सोते और कन्द-मूल-फल खाते रहे। उन्होंने अपने मन्त्रियों तथा दूसरे दरबारियों के लिये भी साधुओं के समान साधारण जीवन बिताने की व्यवस्था की थी। इस प्रकार भरतजी चौदह वर्ष तक वनवासियों की भाँति जीवन बिताते हुए राम के प्रतिनिधि बनकर अयोध्या का शासन करते रहे।

प्रश्न

१—भरत के जीवन से क्या शिक्षा मिलती है?

२—रामचन्द्र के न लौटने पर भरत ने क्या किया?

३—भरत की कौन-सी बात तुमको अच्छी मालूम होती है? उसे अपनी भाषा में निबन्धरूप में लिखो।

७—महाराज शिवाजी

कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा॥

दक्षिण में अहमदनगर नाम की एक रियासत है। उस समय दिल्ली में मुग़लों का राज्य था। अहमदनगर में जादूराय नाम का एक राजपूत सरदार रहता था। उसके अधीन एक मराठा सरदार था, जिसका नाम मालोजी भोंसला था। एक बार मालोजी अपने पाँच साल के लड़के शाहजी के साथ जादूराय के घर गया। जादूराय अपनी छोटी लड़की जीजीबाई को गोद में लेकर बैठा था। उसने शाहजी को भी अपनी गोद में बैठाकर कहा—"दोनों की जोड़ी कितनी भली मालूम होती है।" बात

ही तो है, जब मुँह से निकल गयी तो फिर क्या। समय पर शाहजी और जीजीबाई का विवाह हो गया। यही दोनों शिवाजी के माता और पिता थे।

जीजीबाई बड़ी देश-सेविका थीं। उन्हें अपने धर्म से बड़ा प्रेम था। वे शाहजी से बहुधा इस बात का विरोध किया करती थीं कि मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं को न सताओ। जीजीबाई के इस विचार का शिवाजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे बचपन में ही वीरत्व और धर्म के प्रेमी बन गये।

शिवाजी की शिक्षा भी वीरों के जीवन की कथाओं से हुई। उनकी देखभाल करने के लिये दादाजी कोण्डदेव नाम के एक पण्डित नियत थे। वे प्रायः उन्हें रामायण और महाभारत की वीरता से भरी हुई कहानियाँ सुनाया करते थे। शिवाजी इन कहानियों को बड़े चाव से सुना करते थे। इस तरह धीरे-धीरे उनके मन पर वीरतापूर्ण विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा। इसके सिवाय उन्हें तीर-तलवार चलाने, घोड़े पर चढ़ने और कुश्ती लड़ने आदि की शिक्षा भी दी गयी। शिवाजी आगे चलकर जो तने बहादुर हुए, वह इसी शिक्षा के प्रभाव से।

शिवाजी जब बड़े हुए तो वे पहाड़ी लोगों का दल जुटा कर इधर-उधर लूट-मार करने लगे। कोण्डदेव उन्हें रोकने की कोशिश करते थे; पर वे मानते न थे। धीरे-धीरे उनका साहस बढ़ता गया। वे बीजापुर राज्य की सीमा पर भी उत्पात मचाने लगे। एक बार उन्होंने बीजापुर के सुलतान की मालगुजारी तक लूट ली थी। सुलतान बहुत डरा। उसने इनके पिता शाहजी को क़ैद कर लिया। पर शिवाजी ने बादशाह शाहजहाँ की मदद से अपने पिता को छुड़ा लिया।

इसके बाद शिवाजी ने जावली के राजा पर चढ़ाई कर दी। जावली का राजा बीजापुर के बादशाह का साथी था। इसलिए बीजापुर के बादशाह ने एक बड़ी भारी सेना अफ़ज़लखाँ के साथ सहायता के लिये भेजी। अफ़ज़लखाँ ने धोखा देकर शिवाजी को मारना चाहा, पर शिवाजी की चालाकी के सामने उसकी एक न चली। वह खुद मारा गया। शिवाजी ने बीजापुर के बादशाह को हराकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

इन दिनों दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब राज्य कर रहा था। वह शिवाजी की इस जीत से बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने अपने सेनापति शाइस्ताखाँ को शिवाजी को दबाने के लिये भेजा, पर पूना के क़िले में शिवाजी ने उसे घेर लिया। शाइस्ताखाँ बड़ी कठिनता से जान बचाकर खिड़कियों की राह से भागा, लेकिन फिर भी शिवाजी ने उसके हाथ की दो उँगलियाँ काट लीं। औरंगजेब इससे बहुत डरा। उसने दूसरी बार जयसिंह को शिवाजी के मुक़ाबिले में भेजा।

राजा जयसिंह और शिवाजी में अच्छी मुठभेड़ हुई। अन्त में दोनों में संधि हो गई। राजा जयसिंह ने प्रयत्न करके शिवाजी को आगरे के दरबार में भेजा। वहाँ शिवाजी का अपमान किया गया। शिवाजी इस अपमान को न सह सके और बादशाह को बुरी तरह फटकार सुनाकर दरबार से लौट आये।

परन्तु आगरे की राजधानी के बाहर निकलना कठिन काम था। उनपर चारों ओर से पहरा पड़ रहा था। वे कैदी की तरह क़िले में रखे जाते थे। अंत में मिठाई की टोकरी में छिपाकर बड़ी चतुराई से शिवाजी वहाँ से भाग निकले। नौ महीने के बाद शिवाजी जब अपने देश में आये तो उनका हृदय फिर उत्साह से भर गया।

आगरे से लौटकर शिवाजी ने फिर लड़ाई का डंका बजा दिया। औरंगजेब भी कब चुप रहकर बैठनेवाला था। उसने शिवाजी को दबाने के लिये एक बड़ी भारी सेना भेजी। लेकिन इस बार मुग़लों की हार हुई। वे कई जगह बड़ी बुरी तरह से लूटे खसोटे गये। इसी समय शिवाजी का राजतिलक हुआ और उन्होंने छत्रपति की उपाधि धारण की।

मरहठों में इस समय बल भी अधिक था। मुग़ल बारबार चढ़ाई करते थे; पर हार जाते थे। शिवाजी का तेज सारे देश में फैल गया। बीजापुर और गोलकुण्डा आदि मुसलमानी राज्यों को बुरी तरह नीचा देखना पड़ा। शिवाजी कई मुसलमान हाकिमों से कर भी वसूल करने लगे। सारे दक्खिन में उनके नाम की तूती बोलने लगी।

अंत में ६० वर्ष की अवस्था में महाराज शिवाजी इस दुनिया से चल बसे। वे गौ और ब्राह्मण के बड़े सेवक थे। दूसरे की स्त्रियों को माता की तरह मानते थे। उनके ये गुण ही उन्हें आज समस्त संसार में अमर बनाये हुए हैं।

"वेद राखे विदित, पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में॥
मीड़ि राखे मुगल मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखो तेगबल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥"

—भूषण

प्रश्न

१—शिवाजी की जीवनी अपनी भाषा में लिखो।

२—इनकी माता ने इन्हें क्या शिक्षा दी और उसका इनपर क्या प्रभाव पड़ा?

३—इनमें क्या विशेष गुण थे, जिससे लोग इनको इतना मानते हैं?

८—शरद्-वर्णन

वर्षा विगत शरदऋतु आई;
लक्ष्मण देखहु परम सुहाई।
फूले काँस सकल महि छाई;
जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्त पन्थ जल सोखा;
जिमि लोभहिं सोखै संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा;
सन्त हृदय जस गत मद मोहा॥
रस-रस सूख सरित सर पानी;
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।
जानि शरद ऋतु खञ्जन आये;
पाय समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पङ्क न रेणु सोह अस धरनी;
नीति निपुण नृप की जस करनी।
जल सङ्कोच विकल भये मीना;
विविध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥
बिन घन निर्मल सोह अकाशा;
जिमि हरिजन परिहरि सब आशा।
कहुँ-कहुँ वृष्टि शारदी थोरी;
कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि।
जिमि हरिभक्तहि पाइ जन, तजहि आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा;
जिमि हरि-शरण न एकौ बाधा।
फूले कमल सोह सर कैसे;
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे॥
गुञ्जत मधुकर-निकर अनूपा,
सुन्दर खग-रव नाना रूपा।
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी;
जिमि दुर्जन पर-सम्पति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही;
जिमि सुख लहै न शङ्कर-द्रोही।
शरद ताप निशि शशि अपहरई;
सन्त-दरश जिमि पातक टरई॥
देखहिं विधु चकोर समुदाई;
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मशकदंश बीते हिम त्रासा,
जिमि द्विज-द्रोह किये कुल नासा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय।
सतगुरु मिले ते जाहि जिमि, संशय भ्रम समुदाय॥

प्रश्न

१—दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुर्जन क्या करता है?
२—अपने शब्दों में शरद्-वर्णन करो।
३—भारतवर्ष में शरद् ऋतु कब होती है?
४—तुमको वर्षा ऋतु अच्छी लगती है या शरद् ऋतु और क्यों अच्छी लगती है? अपने विचारों को संक्षेप में लिखो।

१—महाकवि कालिदास

पुष्पेषु चम्पा, नगरीषु काञ्ची
नदीषु गङ्गा, नृ-वरेषु रामः।
रामासु रम्भा, पुरुषेषु विष्णुः
काव्येषु माघः, कविकालिदासः॥

मालवा के राजा विक्रमादित्य बड़े प्रतापशाली राजा थे। वे बड़े शूर-वीर, गुणज्ञ और विद्वानों का आदर करनेवाले थे। उनकी राजधानी उज्जैन नगरी थी। उनकी सभा में धन्वन्तरि आदि नवरत्न थे। उनमें कालिदास सबसे उत्तम गिने जाते थे। कालिदास ब्राह्मण थे। इनकी जन्मभूमि काश्मीर थी; परन्तु बहुधा ये उज्जैन में रहते थे। कहते हैं कि इन्होंने बचपन में कुछ भी न पढ़ा था। अपनी स्त्री के कारण इन्हें अमूल्य विद्याधन हाथ लगा। इसकी कथा इस प्रकार प्रचलित है कि राजा शारदानन्द की पुत्री विद्वत्तमा महागुणवती और बड़ी पंडिता थी। उसने प्रण कर रखा था कि जो कोई मुझे शास्त्रार्थ में हरा देगा उसी के साथ मैं अपना विवाह करूँगी। उस विदुषी राजकुमारी की विद्वत्ता एवं रूप, यौवन और गुणों की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से पंडित आते थे; पर उससे शास्त्रार्थ में हारकर लौट जाते थे। निदान पण्डितों ने एकमत होकर यह विचार निश्चय किया कि इस राजकुमारी का विवाह किसी ऐसे मूर्ख से कराना चाहिये, जिससे इसको जन्म भर रोते ही बीते। यह सोचकर वे एक मूर्ख की खोज में निकले।

थोड़ी दूर जाकर क्या देखते हैं कि एक मनुष्य जिस डाल पर बैठा है उसी को काट रहा है। उसे महामूर्ख समझकर पंडितों ने उसे बड़े आदर से नीचे बुलाया और कहा कि हमारे साथ

चलो, हम तुम्हारा विवाह राजा की पुत्री के साथ करा दें। परन्तु वहाँ जाकर तुम मुँह से न बोलना। जो कुछ बातचीत करनी हो, सब संकेतों द्वारा करना। इस प्रकार पट्टी पढ़ाकर वे उसे सभा में ले गये। पंडितों ने उसका बड़ा आदर किया और उसे उन्होंने सबसे ऊँचे आसन पर बैठाया। जब वह बैठ गया तब राजकुमारी से निवेदन किया कि ये बृहस्पति के समान बुद्धिमान् और विद्वान् हमारे गुरु महाराज आपके साथ विवाह करने आये हैं, परन्तु आजकल ये मौनव्रत धारण किये हुए हैं। जो कुछ शास्त्रार्थ करना हो, सब संकेतों द्वारा कीजिये। राज-कुमारी ने इस अभिप्राय से कि ईश्वर एक है, एक उँगली उठायी। उस मूर्ख ने समझा कि राजकुमारी एक उँगली उठाकर मेरी एक आँख फोड़ना चाहती है। अतः उसने इस विचार से कि मैं तेरी दोनों आँखें फोड़ दूँगा, अपनी दो उँगलियाँ दिखलायीं। परन्तु पंडितों ने उन दोनों उँगलियों से ऐसे-ऐसे अर्थ निकाले, ऐसे-ऐसे गूढ़ भाव प्रगट किये कि राजकुमारी को हार माननी पड़ी। फिर क्या था, दोनों का विवाह हो गया। रात को राजभवन में जब दोनों सो रहे थे तब एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि यह क्या हल्ला है? वह मूर्ख तो किसी शब्द का भी यथार्थ उच्चारण कर नहीं सकता था। उसने कहा "उट्र" चिल्लाता है। राजकुमारी ने फिर पूछा, तब भी उस मूर्ख के मुँह से "उष्ट्र" शब्द शुद्ध न निकला। बार-बार "उट्र-उट्र" बकता रहा। तब तो पंडितों का छल राजकुमारी पर खुल गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी। फिर क्रोध में आकर उस मूर्ख को घर से बाहर निकलवा दिया।

मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ। पहले तो उसे इतना दुःख हुआ कि आत्मघात करने पर सन्नद्ध हो गया। फिर

सोच-समझकर काली देवी की आराधना करने लगा। देवी की कृपा से उसे विद्या की सिद्धि हुई और वह कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब वह पंडित होकर घर लौटा तब द्वार के किवाड़ बन्द पाये। किवाड़ खुलवाने के लिये उसने अपनी स्त्री से कहा—"अनावृतकपाटं द्वारं देहि।" अर्थात् किवाड़ खोलो। विद्योत्तमा ने पति की बोली पहचानी और कहा—"अस्ति कश्चि-द्वाग्विशेषः?" अर्थात् क्या कुछ बोलने में विशेषता है? कालि-दास ने अपनी स्त्री का प्रश्न सुनकर उसका एक एक पद ग्रहण करके तीन काव्य बनाये। "अस्ति" पद को ग्रहण करके "अस्त्युत्तरस्यां" इत्यादि कुमारसम्भव नामक महाकाव्य का निर्माण किया, दूसरे "कश्चित्" पद को ग्रहण करके "कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा" इत्यादि मेघदूत की रचना की और तीसरे पद "वाग्" को ग्रहण करके उन्होंने "वागर्थाविव संपृक्तौ" इत्यादि रघुवंश नामक महाकाव्य रचा। कालिदास को धुरन्धर विद्वान् देखकर विद्योत्तमा को जितना आनंद हुआ होगा, वह लिखने में नहीं आ सकता।

कालिदास कौन थे और किस समय में हुए, यह अभी तक ठीक-ठीक निश्चय नहीं हुआ। परम्परा से यही सुनने में आता है कि वह राजा विक्रमादित्य के समय में उनकी सभा में नवरत्नों के मुखिया थे।

कालिदास की रचनाओं में तीन नाटक और चार काव्य प्रसिद्ध हैं। नाटकों के नाम अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र हैं तथा काव्यों के नाम रघुवंश, कुमार-संभव, मेघदूत और ऋतुसंहार हैं। इनके अतिरिक्त नलोदय, ज्योतिर्विदाभरण आदि कुछ और भी ग्रन्थ उनके बनाये हुए बताये जाते हैं; पर बहुत संभव है कि वे किसी दूसरे कालिदास की रचनाएँ हों।

कालिदास संस्कृत के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। उनकी कीर्ति भारतवर्ष के बाहर भी दूर-दूर तक फैल चुकी है। उनके शकुन्तला नाटक को पढ़कर दुनिया चकित है। एक बड़े विद्वान् कवि का कहना है कि कालिदास ने इस नाटक में पृथ्वी पर स्वर्ग उतार दिया है।

प्रश्न

१—कालिदास ने विद्योपार्जन कैसे किया ?

२—उनका कौन-सा ग्रन्थ तुमने पढ़ा है ? उसके दो श्लोक लिखो।

३—संक्षेप में कालिदास की जीवनी अपनी भाषा में लिखो।

१०—स्वास्थ्य-रक्षा

भगवान् ने हमारे शरीर को स्वस्थ बनाया है। हमारा स्वास्थ्य उसी समय बिगड़ता है जब हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करते हैं। शरीर को पूर्णतया स्वच्छ रखना, शुद्ध वायु सेवन करना, स्वच्छ एवं शुद्ध जल तथा भोजन का प्रयोग करना, समय से सोना, उठना, स्नान, भोजन और व्यायाम करना, सबके साथ प्रेमभाव रखना, अपने आचार-विचार उत्तम रखना, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि बुरे भावों से दूर रहना स्वास्थ्य के लिये हितकर है। नीरोग रहने के लिये यह परमावश्यक है कि पूज्य ऋषियों के बनाये हुए धर्मपथ पर चलें और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन करें।

रात को जल्द सोना और प्रातःकाल जल्द उठना स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकारी है। सूर्योदय के बाद तक सोते रहना दरि-

द्रता का चिह्न है और शरीर के लिये बहुत हानिकारक है। कहा भी है—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणम्
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानम्
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

नीरोग रहने के लिये शरीर को स्वच्छ रखना बहुत आवश्यक है। इसलिये इसका बराबर ध्यान रखना चाहिये। मल-त्याग की क्रिया नियमित समय पर होनी चाहिये। मलमूत्रादि के वेगों को कभी नहीं रोकना चाहिये। शरीर को स्वच्छ रखने से चित्त प्रसन्न रहता है और उत्साह बढ़ता है। पढ़ने में मन लगता है और स्मरण-शक्ति बढ़ती है। स्वास्थ्य ठीक रहता है और शरीर में बल बढ़ता है। शौच के बाद दन्तधावन करना चाहिये। जो लोग दाँत साफ़ नहीं करते उनके मुँह से दुर्गन्ध आती रहती है एवं उनके दाँतों पर मैल जम जाता है और कुछ समय के बाद कीड़े लग जाते हैं, जिससे दाँत खोखले होकर टूटने लगते हैं। दाँतों को स्वच्छ रखना बहुत सहज है; किन्तु नित्य साफ़ करना चाहिये। बबूल या नीम की दतवन सर्वश्रेष्ठ है। यदि यह न मिल सके तो किसी अच्छे मञ्जन को काम में लाना चाहिये।

शरीर को स्वच्छ करने की सबसे उत्तम रीति स्नान है। स्नान का यह प्रयोजन नहीं कि शरीर पर लोटा दो लोटा जल डाल दिया; किन्तु उचित ढंग और नियमित समय का स्नान ही लाभकारी और स्वास्थ्य-वर्धक होता है। स्नान नित्य करना चाहिये। यह आवश्यक नित्य-कर्म है। स्नान करने का सबसे उत्तम समय शौच आदि से निवृत्त होने के बाद प्रातःकाल का

है। उस समय के स्नान से दिन और रात का जमा हुआ मैल शरीर से दूर हो जाता है और चित्त में उत्साह आ जाता है। शुद्ध और खुली वायु में स्नान करना विशेष लाभलायक होता है। स्नान का जल शुद्ध होना चाहिये। स्वच्छ ठण्डे जल से स्नान करने से लाभ होता है। जहाँ नदी हो वहाँ नदी की धार में स्नान करना चाहिये। गंगाजल में विशेष गुण है। गंगा-स्नान से बहुत लाभ होते हैं। इससे रोगी मनुष्य भी निरोग हो जाते हैं। धार्मिक दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्त्व है। स्नान से पहले शरीर पर तेल की मालिश करना उत्तम है। नहाते समय सारे शरीर को भलीभाँति मलना चाहिये। जाड़े में कम से कम महीने में दो बार तो तेल की मालिश होनी ही चाहिये। इससे चर्म में रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है और भीतर की विषैली वस्तुएँ बाहर आ जाती हैं। स्नान के बाद साफ़ तौलिये से सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछना आवश्यक है। आँख, कान, नाक, जिह्वा, नाखून आदि की सफाई के लिये आजकल साबुन का प्रयोग बहुत बढ़ रहा है; किन्तु यह बड़ी अपवित्र और हानिकारक वस्तु है। इससे बालों को हानि होती है। और वे जल्द सफेद हो जाते हैं। शरीर पर लगाने से त्वचा में भी रूखापन आ जाता है। सिर धोने के लिये आँवला सर्वोपरि है। इससे बाल मुलायम और लम्बे हो जाते हैं। आँवले के अभाव में रीठी, बेसन, बेल, मुल्तानी मिट्टी आदि का प्रयोग भी अच्छा है।

स्नान के बाद देवाराधन करना चाहिये। इसे नित्य-कर्म में माना गया है। सन्ध्योपासन से शरीर नीरोग रहता है, चित्त प्रसन्न और मन में अद्भुत स्फूर्ति बनी रहती है। इससे चित्त को एकाग्र करने की शक्ति का संचार होता है। प्राणायाम से मन

की शुद्धि होती है और वायु की वृद्धि होती है। धर्मबुद्धि का विकास होता है और बुरी वासनाएँ दब जाती हैं। चित्त को शान्ति मिलती है और सद्भाव का संचार होता है। स्मरणशक्ति बढ़ जाती है और विद्योपार्जन में बड़ी सहायता मिलती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को देवाराधन अवश्य करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-रक्षा के लिये पाँच बातों पर ध्यान देना आवश्यक है; अर्थात् घर, वस्त्र, भोजन, व्यायाम और रहन-सहन का ढंग।

घर—यथासंभव घनी बस्ती से हटकर होना चाहिये, जहाँ शुद्ध हवा अच्छी तरह मिल सके। आसपास खुली जमीन हो तो और भी अच्छा है। पर इस बात का ध्यान रहे कि आसपास की धरती में पानी न समाता हो और न इकट्ठा होता हो। घर में ऐसी खिड़कियाँ और दरवाजे अवश्य हों, जिनसे साफ़ हवा घर के प्रत्येक भाग में पहुँच सके। जिस मकान में केवल एक ही दरवाज़ा होता है, उसकी हवा साफ़ नहीं हो सकती। इसके साथ ही साथ घर ऐसा बना हुआ होना चाहिये कि सूरज की धूप भी अच्छी तरह पहुँच सके। अँधेरे मकानों में रहनेवाले मनुष्य कभी नीरोग नहीं रह सकते। घर के कमरे यथासंभव ऊँचे बनवाने चाहिये। सारे घर को बुहारी आदि से प्रति दिन साफ़ करना चाहिये और साल में एक बार अवश्य पोत देना चाहिये। रोटी बनाने की जगह अलग और बिल्कुल साफ़ सुथरी तथा लिपी-पुती रहनी चाहिये। पाखाना और पेशाबखाना घर के ऐसे भाग में होना चाहिये, जो रसोई से दूर हो। नालियाँ काफ़ी ढाल की हों, जिससे पानी कहीं रुकने न पावे और तुरन्त बह जाय। जिस घर में सील रहती हो, वह रहने योग्य नहीं होता। अपने घर को कभी गंदा मत बनाओ। घर

में जगह-जगह थूकना, फल छीलकर छिलके फर्श पर पड़े रहने देना; साग-भाजी काटकर उसकी छीलन घर में ही डाल देना, रद्दी काग़ज़ फाड़कर या पूरी मिठाई खाकर उसके पत्ते या दोने आँगन में फेंक देना आदि बड़ी गन्दी आदतें हैं। कूड़े को बटोरकर ऐसी जगह डाल देना चाहिये जो बैठने-उठने की जगह से दूर हो। पाखाने के घर की सफ़ाई पर पूरा ध्यान रखना चाहिये। वह उतना ही साफ़ होना चाहिये, जितना कोई कमरा। सोने का कमरा खूब हवादार होना चाहिये। उसमें सन्दूक आदि बहुत-सा सामान नहीं रखना चाहिये।

वस्त्र—ऋतु के अनुकूल पहनना चाहिये। उनके बहुमूल्य होने की कोई आवश्यकता नहीं, हाँ, सफाई अवश्य हो। यथा-संभव कम से कम वस्त्रों का उपयोग करना चाहिये। तंग वस्त्रों को पहनना अच्छा नहीं। वस्त्र ऐसे हों, जिनसे अंगों के परिचालन में कठिनता न पड़े और त्वचा तक हवा पहुँचती रहे। नीचे पहनने के वस्त्र को प्रति दिन धोकर साफ़ करना चाहिये। सिर का वस्त्र यथासंभव हल्का होना चाहिये। ठण्डे देशों में तथा जाड़े के दिनों में ऊन के कपड़े पहनना आवश्यक है, जिसमें शरीर को ठण्ड न लगने पावे। गर्मी में हल्के वस्त्र पहनने पड़ते हैं। मैले वस्त्र पहनना बहुत बुरा है। इससे रोग उत्पन्न होता है। वस्त्र स्वच्छ रखने के लिये धन की आवश्यकता नहीं; किन्तु दृढ़ संकल्प चाहिये।

वस्त्रों को स्वयं धो डालनें में कोई शर्म नहीं; किन्तु अपनी चीजों को ठीक रखने के लिये अपने ही ऊपर निर्भर रहना गर्व की बात है। वस्त्रों का फटा होना भी बहुत बुरा है। इससे लापरवाही सूचित होती है। वस्त्र की मरम्मत कर लेना या करा लेना बड़ा आवश्यक है।

भोजन—स्वास्थ्य उत्तम भोजन पर निर्भर है और उसी से शरीर में बल आता है। उत्तम भोजन वही है जिससे किसी प्रकार का रोग उत्पन्न न हो और जो काम करने के लिये शक्ति उत्पन्न करे। बाज़ार का बना भोजन हानिकारक होता है। इसलिये यथासंभव घर का बना पवित्र भोजन ही स्वास्थ्यकारक है। एक कहावत है कि खाने के लिये न जियो; किन्तु जीने के लिये खाओ। भोजन सदा नियमित और सादा होना चाहिये। यह ठीक नहीं कि एक दिन दस बजे भोजन हो और दूसरे दिन दो बजे। वैद्यक शास्त्र में कहा गया है "याम-मध्ये न भोक्तव्यं याम-युग्मं न लंघयेत्।" अर्थात् सूर्योदय से एक पहर के भीतर भोजन न करे और दूसरे पहर के भीतर अवश्य कर ले। सायंकाल का भोजन सोने के तीन घंटे पूर्व कर लेना चाहिये। व्यायाम के पीछे तुरन्त भोजन करना ठीक नहीं। भोजन के पश्चात् कुछ देर आराम अवश्य करे और सायंकाल के भोजन के पश्चात् शत पद चलना चाहिये।

भोजन खूब भूख लगने पर ही करना चाहिये। भोजन करते समय भी ठूँसकर खाना अच्छा नहीं। कहा गया है कि पेट को आधा भोजन से, चौथाई पानी से, और बाकी हवा से भरे। भोजन जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिये। भोजन बदल-बदलकर करना उचित है। सदा एक-सा भोजन अच्छा नहीं लगता।

मांस-भोजन की अपेक्षा वनस्पति-भोजन कहीं अधिक अच्छा है। दूध अवश्य पीना चाहिये। भोजन में हरे साग और फलों की आवश्यकता अधिक रहनी चाहिये। बहुत उग्र स्वाद की चीजें स्वास्थ्य के लिये हानिकार होती हैं। दूध बहुत उत्तम भोजन है।

व्यायाम—मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्र में कहा है—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा॥

श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यञ्चादि परमं व्यायामादुपजायते॥

खेद है कि हमारे भारतीय विद्यार्थी पश्चिमी शिक्षा के फेर में पड़कर इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। शरीर-यात्रा के लिये व्यायाम अनिवार्य है। व्यायाम सदा निश्चित समय पर नियमित रूप से किया जाना चाहिये।

अनियमित व्यायाम से लाभ नहीं होता। व्यायाम के अनेक भेद हैं, उनमें से कोई न कोई अपनी रुचि और बल के अनुसार प्रति दिन करना चाहिये। चलना और तैरना बहुत अच्छे व्यायाम हैं। चलने के व्यायाम के लिये सब से उपयुक्त समय प्रातःकाल का है। युवा पुरूषों को प्रति दिन आठ-दस मील चलना चाहिये। दौड़ना, घुड़सवारी, दंड-बैठक, मुद्गर आदि व्यायाम प्रातःकाल करे और सन्ध्या समय फुटबाल आदि मिल-जुलकर खेलेजानेवाले खेल खेले।

रहन-सहन--चलते समय, बैठते समय, पढ़ते समय तथा लिखते समय शरीर को सदा सीधे रखे। कमर झुकाकर चलना या बैठना ठीक नहीं। थोड़ी रोशनी में पढ़ने-लिखने का काम कभी मत करो। पढ़ते समय पुस्तक को कम से कम फुट डेढ़फुट दूर रखो। मिट्टी के तेल की रोशनी बहुत हानि पहुँचाती है।

स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये तम्बाकू, चाय, शराब आदि के नशों से सदा बचना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन स्वास्थ्य और शक्ति के लिये सबसे अधिक आवश्यक है। मानसिक विचारों का भी

स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये अनुत्साह, निराशा, चिन्ता आदि भावों को पास न फटकने दो। 'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय'—यह सिद्धान्त सदा ध्यान में रखो।

मनुष्य का शरीर परमात्मा की दी हुई एक धरोहर है। उसके साथ मनमानी करके उसका नाश करने का मनुष्यों को कोई अधिकार नहीं। अतः सदैव अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि इसी के द्वारा लोक परलोक दोनों का साधन होता है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'।

प्रश्न

१—स्वास्थ्य ठीक किस प्रकार रह सकता है, संक्षेप में कहो।

२—यदि हम अपने शरीर को स्वच्छ न रखें तो क्या हानि होगी ?

३—रहने का घर कहाँ और कैसा होना चाहिये ?

४—चाय, तम्बाकू पीने से, कमर झुकाकर चलने या बैठने से तथा व्यायाम न करने से क्या-क्या हानि हो सकती है ?

५—भोजन कितना और कैसे करना चाहिये।

११—परीक्षा

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तब परमात्मा की याद आयी। जाकर महाराज से विनय की—"दीनबन्धु ! गुलाम ने हुजूर की खिदमत चालीस साल

तक की, अब कुछ दिन परमात्मा की सेवा करने की आज्ञा चाहता हूँ। और फिर मेरी अवस्था भी हीन हुई, राजकाज सँभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढ़ापे में दाग़ लगे। सारी जिन्दगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाय।"

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीतिकुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया; लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तब हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। हाँ, शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिये नया दीवान आपको ही चुनना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के नामी-नामी पत्रों में यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़ के लिये एक सुयोग्य दीवान की ज़रूरत है। जो सज्जन अपने को स पद के योग्य समझें, वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंह की सेवा में हाज़िर हों। यह जरूरी नहीं कि वे ग्रेजुएट हों; मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है। मदाग्नि के मरीज़ों को यहाँ तक कष्ट उठाने की ज़रूरत नहीं। एक महीने तक उम्मेदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देख-भाल की जायगी। विद्या का कम; परन्तु कर्त्तव्य का अधिक विचार किया जायगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे, वे इस पद पर सुशोभित होंगे।

× × × ×

इस विज्ञापन ने सारे देश में हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा ओहदा, और किसी प्रकार की सनद की क़ैद नहीं! केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना नसीब आजमाने के लिये चल खड़े हुए। देवगढ़ में नये-नये और रङ्ग-बिरङ्ग के मनुष्य दिखायी देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मेदवारों का एक मेला-सा उतरता। कोई पञ्जाब से चला आता था, कोई

मद्रास से, कोई नये फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। रङ्गीन पैजामे और चोग़े तथा नाना प्रकार के अङ्गरखे और कंटोप देवगढ़ में अपनी सजधज दिखाने लगे।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए महीने के दिन गिना करते थे। हर एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर "अ" नौ बजे तक सोया करते थे। आजकल वह बगीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मिस्टर "ब" को हुक्का पीने की लत थी; मगर आजकल बहुत रात गये किवाड़ बन्द करके अँधेरे में सिगार पीते थे। मिष्टर "द", "स" और "ज" से उनके घरों पर नौकरों का नाक में दम था; लेकिन ये सज्जन आजकल "आप" और "जनाब' के बग़ैर नौकर से बातचीत नहीं करते थे। महाशय "क" नास्तिक थे, आजकल उनकी धर्मनिष्ठता देखकर मन्दिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शङ्का लगी रहती थी। मिस्टर "ल" को किताबों से घृणा थी; परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रन्थ खोले हुए पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बातें कीजिये, वह नम्रता और सदाचार का देवता बन जाता था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें। कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है?

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा हुआ है?

× × × ×

एक दिन फैशनवालों को सूझी कि आपस में "हाकी" का खेल हो जाय। यह प्रस्ताव हाकी के मँजे हुए खिलाडियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है, इसे क्यों छिपा

रखें। सम्भव है कुछ हाथों की सफाई ही काम कर जाय। चलिये, तय हो गया, कोर्ट बन गये, खेल शुरू हो गया और गेंद ठोकरें खाने लगी।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिल्कुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे, भलेमानस लोग शतरञ्ज और ताश जैसे गम्भीर खेल खेलते थे, दौड़-कूद के खेल बच्चों के लिये समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावक लोग जब गेंद को लेकर तेज़ी से बढ़ते तब ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे, मानो लोहे की दीवार हैं।

सन्ध्या तक यही धूम रही, लोग पसीने में तर हो गये। खून की गर्मी आँख और चेहरे से झलक रही थी। हाँफते-हाँफते बेदम हो गये; लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका।

अँधेरा हो गया था। इस मैदान में ज़रा दूर हटकर एक नाला था। उसपर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में से होकर आना पड़ता था। खेल अभी बन्द ही हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिये हुए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी तेज़ थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथों से ढकेलता; लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमज़ोर। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बराबर ज़ोर लगाता और बराबर झुंझलाकर बैलों को मारता; लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर उधर निराश होकर ताकता; मगर कोई सहायक नज़र न आता था, गाड़ी को अकेले

छोड़कर कहीं जा भी न सकता था, बड़ी आपत्ति में फँसा हुआ था। इसी बीच में खिलाड़ी लोग हाथों में डंडे लिये झूमते झामते इधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ़ सहमी हुई आँखों से देखा। परन्तु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा; मगर बन्द आँखों से। उन आँखों से जिनमें सहानुभूति न थी, जिनमें स्वार्थ था, मद था; मगर उदारता या वात्सल्य का नाम भी न था।

❀ ❀ ❀ ❀

लेकिन उसी समूह में एक ऐसा मनुष्य भी था, जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हाकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गयी थी। वह लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। ठिठक गया। किसान की सूरत देखते ही सब बात ज्ञात हो गयी। डण्डा एक किनारे रख दिया। कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला—"मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ?"

किसान ने देखा कि गठे हुए बदन का लम्बा आदमी सामने खड़ा है, डरकर बोला—"हुजूर! मैं आप से कैसे कहूँ?" युवक ने कहा—"मालूम होता है, तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हुए हो। अच्छा, तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहियों को ढकेलता हूँ। अभी गाड़ी ऊपर जाती है।

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने पहियों को ज़ोर लगाकर उसकाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटनों तक जमीन में गड़ गया, लेकिन हिम्मत न हारा। उसने फिर ज़ोर किया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा, बैलों को सहारा मिला, हिम्मत बँध गयी, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार जो ज़ोर किया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—"महाराज ! तुमने आज मुझे उबार दिया, नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।

निदान महीना पूरा हुआ। हिसाब का दिन आ पहुँचा। उम्मेदवार लोग प्रातःकाल से ही अपनी किस्मतों का फैसला सुनने के लिये उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक चेहरे पर आशा और निराशा के रङ्ग आते जाते थे। नहीं मालूम आज किसके नसीब जागेंगे ! न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपा-दृष्टि होगी !

शाम के वक्त राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य लोग, राजा के कर्मचारी और दरबारी और दीवानी के उम्मेदवारों का समूह सब रङ्गबिरङ्ग की सजधज बनाये दरबार में आ विराजे। उम्मेदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजानसिंह ने खड़े होकर कहा—"ऐ मेरे दीवानी के उम्मेदवार साहिबों ! मैंने आप लोगों को जो कुछ तकलीफ दी हो उसके लिये क्षमा कीजिये। मुझे इस पद के लिये ऐसे पुरुष की जरूरत थी जिसकी छाती में हृदय हो और चित्त में आत्मबल, हृदय वह, जो उदार हो, आत्मबल वह, जो आपत्ति का वीरता के साथ सामना करे, इसी रियासत के सौभाग्य से हमको ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणवाले लोग संसार में कम हैं और जो हैं, वे कीर्त्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं, जहाँ तक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासत को पण्डित जानकीनाथ सरीखा दीवान पाने पर बधाई देता हूँ।"

रियासत के कर्मचारियों और रईसों ने जानकीनाथ की तरफ

देखा, उम्मेदवारों के समूह की आँखें उधर उठीं; मगर उन आँखों में सत्कार था, इन आँखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फ़रमाया—"आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष खुद जख्मी होने पर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ा दे उसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता का सञ्चार है, ऐसा आदमी ग़रीबों को कभी न सतायेगा, उसका संकल्प दृढ़ है, जो उसके चित्त को स्थिर रखेगा, वह चाहे धोखा खा जाय, परन्तु दया और धर्म के मार्ग से कभी न हटेगा, इसलिये दीवान के पद पर इन्हें नियुक्त करके मैं निश्चिन्त हो जाता हूँ, इनके हाथ से प्रजा को सदा लाभ ही पहुँचेगा।"

प्रश्न

१—सरदार सुजानसिंह ने पं० जानकीनाथ को क्यों दीवान बनाया। उनमें कौन विशेष गुण थे।

२—इस कथा से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

१२—गोस्वामी तुलसीदास

साधारणतया भारतवर्ष भर में और विशेषकर उत्तर भारत में ऐसा कोई मनुष्य न होगा जिसने 'तुलसी-रामचरितमानस' का नाम न सुना हो। राजा से लेकर रङ्क तक और महलों से लेकर झोपड़ों तक सब कहीं इसका प्रचार है। बड़े-बड़े विद्वानों से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक 'रामचरितमानस' से अपने मानस की तृप्ति करते और अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। इस ग्रन्थ

ने हिन्दू-जाति का बड़ा उपकार किया है। रीति, नीति, आहार, व्यवहार सब बातों में मानो 'रामचरितमानस' ही हिन्दूमात्र के लिये एकमात्र पथदर्शक है।

प्रत्येक विषय में उसकी चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं और जनसाधारण के लिये धर्मशास्त्र का काम देती हैं। न जाने इस ग्रन्थ ने कितने को डूबने से बचाया, कितनों को कुमार्ग पर जाने से रोका, कितनों के निराशामय जीवन में आशा का सञ्चार किया, कितनों को घोर पाप से बचाकर पुण्य के सञ्चय करने में लगाया और कितनों को धर्मपथ पर डगमगाते हुए चलने में सहारा देकर सँभाला। रामायण के विशद चरित्र-चित्रण एवं मानवीय मनोविकारों के स्पष्टीकरण ने इसे अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है। ऐसे ग्रन्थरत्न के बनानेवाले 'गोस्वामी तुलसीदास' का जीवन-चरित सुनने की सभी को उत्कण्ठा रहती है। किन्तु शोक है कि इनके जीवन-वृत्तान्त के विषय में बहुत कम बातें ज्ञात हैं।

साधारण कवि प्रायः लोभवश अपना और अपने आश्रय-दाता का वृत्तान्त अपने ग्रन्थ में लिखा करते हैं। परन्तु गोस्वामी-जी ने मनुष्यों का चरित्र न लिखने का प्रण किया था, वे केवल भगवान् का गुणगान किया करते थे, इसलिये उन्होंने अपना कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखा। कहीं-कहीं उनकी रचनाओं से उनके चरित्र का आभास मात्र मिलता है; किन्तु वह केवल अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के लिये दिया गया है। किसी किसी ग्रन्थ का समय भी उन्होंने लिख दिया है। इस प्रकार उनका चरित्र-वर्णन करने के लिये हमें अधिकतर दूसरे ग्रन्थों एवं किवदन्तियों का सहारा लेना बड़ा आवश्यक है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्मसमय किसी प्रामाणिक ग्रन्थ

में लिखा नहीं मिलता, कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म विक्रमी सम्वत् १५८६ में हुआ। हम तो दृढ़तापूर्वक केवल इतना ही कह सकते हैं कि गोस्वामीजी का जन्म सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ और वे बड़ी आयु भोगकर परमधाम सिधारे। इनकी मृत्यु काशी में प्लेग के कारण हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

दोहा—संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

इनका जन्मस्थान राजापुर है, वहीं पर गोस्वामीजी की कुटी, मन्दिर आदि आज भी विद्यमान हैं।

कोई इन्हें कान्यकुब्ज, कोई सरयूपारी और कोई पराशर गोत्र द्विवेदी ब्राह्मण कहते हैं। इसके लिये भी कोई विशेष प्रमाण नहीं जिससे कि हम निश्चयपूर्वक कुछ कह सकें। हाँ, इतना अवश्य है कि थे वे ब्राह्मण और बहुत सम्भव है कि सरयूपारी हों।

लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। यह कथन भी केवल अनुमानमात्र है, इसकी पुष्टि विशेषरूप से कहीं नहीं मिलती। तुलसीचरित्र में लिखा है कि तुलसीदास ने स्वयं कहा है कि इनके प्रपितामह परशुराम मिश्र थे जिनके पुत्र का नाम शङ्कर मिश्र था, उनके पुत्र सन्त मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र हुए। रुद्रनाथ मिश्र के गणपति, महेश, तुलाराम और मङ्गल चार पुत्र और वाणी एवं विद्या नाम की दो कन्याएँ हुईं। तृतीय पुत्र तुलाराम ही गोस्वामीजी थे। इनके गुरु नरहरिदास ने इनका नाम रामबोला रखा था; किन्तु यह अपनी दीनता दिखाने के लिए अपने आपको तुलसीदास कहने लगे। कहते हैं कि अभुक्त मूल नक्षत्र

में जन्म लेने के कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था, त्यागने के सम्बन्ध में तो तुलसीदास ने विनयपत्रिका में स्पष्ट कहा है; पर उसका कारण नहीं बतलाया। इधर तुलसीचरित में विवाह तक तुलसीदास का माता-पिता के साथ रहना स्पष्ट कहा है। सम्भव है कि किसी कारणवश बालकपन से माता-पिता के जीवित रहते ही अपने गुरु नरहरिदास के यहाँ वे रहते रहे हों।

यह प्रसिद्ध है कि इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जिससे तारक नामक एक पुत्र भी पैदा हुआ, जो बचपन में ही मर गया था। तुलसीचरित में इनके तीन विवाह लिखे हैं—तीसरा विवाह कञ्चनपुर ग्राम के उपाध्याय लक्ष्मण की कन्या बुद्धिमती से हुआ था, इसी के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए।

कहते हैं कि तीसरे विवाह की स्त्री पर गोस्वामीजी बहुत आसक्त रहा करते थे। एक दिन स्त्री बिना कहे अपने पिता के घर चली गयी। गोस्वामीजी से पत्नी-वियोग न सहा गया वहाँ जाकर वे स्त्री से मिले। वहाँ स्त्री के बुरा-भला कहने से ऐसे विरक्त हुए कि उसके बारबार विनती करने पर भी सीधे काशी चले गये और भगवद्भजन में मग्न रहने लगे। वहाँ गङ्गा के तट पर, अस्सी घाट के समीप उनका मठ अब तक बना हुआ है, वहाँ एक जोड़ी खराऊँ रखी हुई है, लोग कहते हैं वे तुलसीदास की ही हैं, वे कभी-कभी तीर्थयात्रा के लिये भी जाया करते थे, इनमें अयोध्या, चित्रकूट और मथुरा मुख्य हैं।

गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे। स्मार्त सब देवताओं का पूजन तथा जप करते हैं, वे किसी से विरोध नहीं रखते। यही

सिद्धान्त तुलसीदास का भी था, क्योंकि उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रन्थ में सभी देवी-देवताओं से प्रार्थना की है और सभी को राममय बतलाया है। रामायण में गोस्वामीजी ने अपनी नम्रता बहुत ही दिखलायी है, यहाँ तक लिख दिया है कि—

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥

ऐसी कहावत है कि गोस्वामीजी शौच के लिए नित्य गङ्गा-पार जाया करते थे और लौटते समय लोटे का बचा हुआ जल आम के पेड़ की जड़ में डाल देते थे। एक दिन उस पेड़ पर रहनेवाले प्रेत ने उस जल से तृप्त हो गोस्वामीजी से वर मागने के लिये कहा, गोस्वामीजी ने रामचन्द्रजी के दर्शन का वर माँगा, उस पर अपनी अशक्तता बताते हुए प्रेत ने कहा कि अमुक मन्दिर में रामायण की कथा सुनने के लिए मैले-कुचैले कोढ़ी का रूप धारण किये हुए हनुमानजी प्रतिदिन आते हैं, उन्हीं की कृपा से तुम्हारा मनोरथ सफल हो सकेगा। निदान ऐसा ही हुआ। बहुत कुछ आग्रह करने पर हनुमानजी ने गोस्वामीजी से कहा कि चित्रकूट में जाओ वहीं दर्शन होगा, तुलसीदासजी ने ऐसा ही किया।

उनके सम्बन्ध में और भी कई एक विचित्र कथानक प्रचलित हैं, जैसे—मुर्दे का जिलाना, हत्या छुड़ाना आदि-आदि। तुलसीदास जी जैसे पारदर्शी तथा वाक्सिद्ध महात्माओं के विषय में इनका संघटित होना सहज है; किन्तु इनकी यथार्थता के विषय में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि तुलसीदासजी ने कबीर आदि की तरह अन्य कोई अलग मत नहीं चलाया; परन्तु चाहे किसी भी मत या धार्मिक

विश्वास का हिन्दू क्यों न हो, वह गोस्वामीजी के दिखाये मार्ग का अवश्य कुछ न कुछ अनुसरण करता है। उन्होंने रामायण में धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति आर्यग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार सीधीसादी भाषा में उदाहरण के साथ समझायी है कि शैव, शाक्त, स्मार्त, वैष्णव किसी भी सिद्धान्त से विरोध नहीं पड़ता और सब मतानुयायी उनकी रामायण का सम्मान करते हैं तथा साधारण लोगो की समज में तो वह पाँचवाँ वेद है।

तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, हिन्दी भाषा में ही लिखा है। उनके ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि वे संस्कृत भी पढ़े थे। रामायण के प्रत्येक काण्ड के आदि में उन्होंने जो श्लोक लिखे हैं वे इस बात के प्रमाण हैं। उन श्लोकों में उन्होंने यह भी लिखा है कि अनेक पुराणों को देखकर उनका निचोड़ रामायण में रखा गया है। पुराण और उपनिषद् आदि ग्रन्थ संस्कृत में ही हैं, इससे भी यह विदित होता है कि वे संकृत जानते थे। वे फ़ारसी भी जानते थे। फ़ारसी में लिखे हुए उनके काग़द पत्र मिले हैं। सारांश यह है कि वे एक विद्वान् पुरुष थे।

तुलसीदास ने छोटे बड़े १२ ग्रन्थों का निर्माण किया है। उनमें रामायण, विनयपत्रिका, गीतावली, दोहावली, कवित्त रामायण और रामाज्ञा अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने जितनी कविता की है, सब में श्रीरामचन्द्रजी का गुणगान किया है। उनके ग्रन्थों में रामायण सब से बड़ा और सबसे उत्तम है। उसका नाम तुलसीदास ने रामचरितमानस रखा था; परन्तु अब सब कोई उसे रामायण ही के नाम से पुकारते हैं। किसी-किसी का यह मत है कि यह काव्य संस्कृत के आदि-काव्य

वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया है; परन्तु यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता, दोनों ग्रन्थों की कथाओं में बड़ा अन्तर है, वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा तो अध्यात्मरामायण से तुलसीदासजी की रामायण की कथा अधिक मिलती है।

तुलसीदासजी बड़े महात्मा और बहुत बड़े कवि थे। रामायण में उन्होंने जिस जिस विषय का वर्णन किया है, उसका रूप-सा खड़ा कर दिया है। उनकी रामायण में अयोध्या-काण्ड सब से उत्तम है। उसमें भी श्रीरामचन्द्र के साथ चलने के लिये सीता की प्रार्थना, लक्ष्मण का अपनी माता से वन जाने की आज्ञा माँगना और राजगद्दी न स्वीकार करने के विषय में वसिष्ठ को भरत का उत्तर अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा विशेष मनोहर है। ब्रज, बुन्देलखण्ड, बिहार, बैसवाड़ा इत्यादि कई प्रान्तों की बोलियों में तुलसीदास ने रामायण लिखी है। उनके अन्य ग्रन्थों में भी यही मिश्रित भाषा पायी जाती है। तुलसीदास के ग्रन्थों में विनयपत्रिका का द्वितीय स्थान है। उसमें उन्होंने श्रीरामचन्द्र सम्बन्धी नाना प्रकार की विनयभरी कविताएँ की हैं।

सुनते हैं, राजापुर में तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई रामायण की एक पुस्तक थी, उसे कोई चुरा ले गया। जब वह पकड़ा गया तब उसने उस पुस्तक को यमुना की धारा में प्रवाहित कर दिया, इससे वह बिगड़ गयी, अयोध्याकाण्ड बीच में था, इस कारण केवल वही पढ़ने योग्य रह गया। वह अब तक राजापुर में रखा है।

प्रश्न

१—गोस्वामी तुलसीदास के विषय में तुम क्या जानते हो?

२—उन्होंने कौन-कौन से ग्रन्थ लिखे हैं?

३—तुलसीदास की रामायण में क्या विशेषता है?

१३—पुरुषार्थ

पुरुष क्या, पुरुषार्थ हुआ न जो,
हृदय की सब दुर्बलता तजो।
प्रबल जो तुम में पुरुषार्थ हो—
सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो।
प्रगति के पथ में विचरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ १ ॥

न पुरुषार्थ विना कुछ स्वार्थ है,
न पुरुषार्थ विना परमार्थ है।
समझ लो, यह बात यथार्थ है—
कि पुरुषार्थ वही पुरुषार्थ है।
भुवन में सुख-शान्ति भरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ २ ॥

न पुरुषार्थ विना वह स्वर्ग है,
न पुरुषार्थ विना अपवर्ग है।
न पुरुषार्थ विना क्रियता कहीं,
न पुरुषार्थ बिना प्रियता कहीं।
सफलता वर तुल्य वरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ३ ॥

न जिसमें कुछ पौरुष हो यहाँ,
सफलता वह पा सकता कहाँ?
अपुरुषार्थ भयङ्कर पाप है,
न उसमें यश है, न प्रताप है।
न कृमि – कीट समान मरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ४ ॥

मनुज - जीवन में जय के लिये—
प्रथम ही दृढ़ पौरुष चाहिये।
विजय तो पुरुषार्थ विना कहाँ !
कठिन है चिरजीवन भी यहाँ।
भय नहीं, भव - सिंधु तरो, उठो ;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ५ ॥

यदि अनिष्ट अड़ें, अड़ते रहें,
विपुल विघ्न पड़ें, पड़ते रहें।
हृदय में पुरुषार्थ रहे भरा—
जलधि क्या, नभ क्या, फिर क्या धरा।
दृढ़ रहो, ध्रुव धैर्य धरो, उठो ;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ६ ॥

यदि अभीष्ट तुम्हें निज स्वत्व है,
प्रिय तुम्हें यदि मान - महत्त्व है।
यदि तुम्हें रखना निज नाम है,
जगत में करना कुछ काम है।
मनुज ! तो श्रम से न डरो, उठो ;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ७ ॥

प्रकट नित्य करो पुरुषार्थ को,
हृदय से तज दो सब स्वार्थ को।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो—
यह विनश्वर देह कृतार्थ हो।
सदय हो, पर - दुःख हरो, उठो ;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥ ८ ॥

प्रश्न

१—पुरुषार्थ क्यों करना चाहिये ? इससे क्या-क्या लाभ हैं ? अपनी सरल भाषा में लिखो।

२—इस कविता को कण्ठस्थ कर लो।

१४—हमारा देश

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारत-भूमि-भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

हमारे देश का नाम भारतवर्ष है। इसका एक पुराना नाम आर्यावर्त्त भी है। अनेक महापुरुषों ने इस देश में जन्म लिया, जिनकी कीर्त्ति अब तक संसार में जगमगा रही है। यहीं जन्म लेकर भगवान् रामचन्द्र ने मर्यादापुरुषोत्तम का आदर्श संसार में खड़ा किया। यहीं जन्म लेकर भगवान् कृष्णचन्द्र ने कर्मयोग का महान् संदेश सुनाया। दया की पावन धारा से समस्त संसार को आप्लावित करनेवाले महात्मा बुद्ध ने भी यहीं जन्म धारण किया था। भरत के समान सिंहों से खेलनेवाले और अभिमन्यु के समान निर्भीक एवं वीर बालक इसी भूमि के लाल थे। इसी पवित्र भूमि ने संसार को सबसे पहले ज्ञान और सभ्यता की शिक्षा दी थी।

इस देश के उत्तर में विशाल हिमालय की शैलमाला पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई है। इसी शैलराज में गौरीशंकर और धवलागिरि जैसी संसार की सब से ऊँची चोटियाँ हैं। यहीं पर मानसरोवर नामक ताल है। यहीं से गंगा-यमुना तथा सिन्धु,

ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ मिलकर भारत-भूमि को अपनी निर्मल जलधारा से सींचती हैं। इसी के अंचल में वह काश्मीर प्रान्त है, जो काव्य और केशर का देश कहा गया है और जिसके सौंदर्य को देखकर किसी कवि ने कहा है कि यदि इस पृथ्वीतल पर कोई स्वर्ग है तो वह यही है। इसकी राजधानी श्रीनगर की स्थापना सम्राट् अशोक ने की थी। भाष्यकार पतंजलि, साहित्य के आचार्य मम्मट, वैयाकरणशिरोमणि कैयट तथा महाकवि कल्हण ने इसी भूमि में जन्म-ग्रहण किया था। काश्मीर के बीच से सिंधु नदी बहती है। सिंधु के उस पार केकय और गान्धार के प्राचीन देश हैं। यहीं प्रतापी मौर्य-सम्राट् ने यवन-सेनापति सेल्यूकस को हराया था। सिंधु के समीप ही तक्षशिला नगरी है, जहाँ प्राचीन भारत का सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय था और जहाँ पर व्याकरण के महान् आचार्य पाणिनि, कूटनीतिज्ञ चाणक्य, महावैद्य जीवक और चरक ने शिक्षा पायी थी।

काश्मीर के दक्षिण में पंजाब पञ्चनद-प्रान्त है, जहाँ हिमालय की पाँच पुत्रियाँ सतलज, रावी, चिनाव, बियास और झेलम निरन्तर क्रीड़ा करती हैं। झेलम के किनारे महाराज पुरु ने जगद्विजयी यवन-सम्राट् सिकंदर का अकेले सामना किया था। सतलज के तीर पर गुप्त-सम्राट् स्कन्दगुप्त ने दुर्दान्त हूणों को करारी हार दी थी। यहीं पवित्र धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता सुनायी थी। यहीं मालव और क्षुद्रक जातियों के प्रजातंत्र-राज्य थे, जिन्होंने यूनानी सेना को परास्त करके सिकंदर तक को संधि करने के लिये बाध्य किया था। यहीं धर्म और देश की रक्षा के लिये सिख जाति के असंख्य वीरों ने अपना बलिदान दिया है। महात्मा नानक और गुरु गोविंदसिंह की क्रीड़ास्थली यही भूमि है। यहाँ

अमृतसर सिखों का तीर्थस्थान गुरुद्वारा है। इसकी राजधानी लाहोर या लवपुर है, जिसे श्रीरामचन्द्र के द्वितीय पुत्र लव ने बसाया था। इसी के पास देहली का महानगर है, जो अनेक सम्राटों की राजधानी रही और इस समय भी भारतवर्ष की राजधानी है। सम्राट् के प्रतिनिधि वाइसराय महोदय यहीं निवास करते हैं।

यमुना नदी के तट पर खड़े होकर देखने से दाहिने हाथ की ओर विशाल राजस्थान है और बाँयीं ओर संयुक्तप्रान्त। ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्य की यह दुहिता क्षात्रधर्म और ब्राह्मणधर्म के बीच खड़ी हुई है। असंख्य वीरों को जन्म देने वाली वीरभूमि राजस्थान की महिमा कौन गा सकता है! अत्यन्त प्राचीन काल में जब सरस्वती नदी समुद्र तक बहती थी, यह भूमि समुद्र के तल में छिपी हुई थी। विधाता के विशेष प्रसाद से वीर-रस ने अपने निवास के लिये यह भूखंड समुद्र से प्राप्त किया। यहाँ कोई स्थान ऐसा नहीं, जो किसी न किसी वीर की कीर्त्तिगाथा से संबद्ध न हो। यहाँ की वीर रानियों ने अपने देश और अपने सम्मान की रक्षा के लिये हँसते-हँसते अपने प्राण अग्नि को समर्पित कर दिये थे। महारानी पद्मिनी ने यहीं आत्मबलि दी थी। यहाँ के आडावला (अर्बुद) पहाड़ की दुर्गम घाटियों ने कई बार राजपूतों की मर्यादा की रक्षा की है। हिन्दूजाति की स्वतंत्रता का पाठ पढ़ानेवाले और उसका सिर ऊँचा रखनेवाले महाराणा प्रताप और राठोर दुर्गादास ने अपने जन्म से इसी भूमि को पवित्र किया था। भक्तशिरोमणि मीराबाई ने, जिनके भजन आज भारतवर्ष के घर घर में गाये जाते हैं, यहीं जन्म ग्रहण किया था। यहीं पर बारह वर्ष के बालक बादल ने अलाउद्दीन जैसे प्रतापी सम्राट् को छकाया था। यही माघ जैसे महान् कवि की जन्मभूमि है। राजपूत-आन के टूटते

हुए आशातन्तु को बचानेवाले, अपनी कविता में दस हजार हाथियों का बल रखनेवाले, महाकवि पृथ्वीराज ने भी यहीं जन्म लिया था। इसी भूमि में सुप्रसिद्ध पुष्कर तीर्थ है। भगवान् कपिल का आश्रम यहीं कोलायत (कपिलायतन) में है, जहाँ प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री तीर्थ करने के लिए आते हैं। इस समय इस प्रान्त में राजपूत जाति के अनेक राज्य हैं, जिनमें मेवाड़, मारवाड़, जयपुर और बीकानेर प्रमुख हैं।

यमुना के बायें तट पर संयुक्तप्रान्त है, जहाँ प्राचीन ब्रह्मर्षिदेश है। यहाँ जगत्पावनी भागीरथी गंगा है। यहीं तीर्थ-राज प्रयाग है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का सुप्रसिद्ध त्रिवेणी संगम है। यहीं अयोध्या और मथुरा के नगर हैं, जहाँ भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण ने अवतार लिया था। यहीं माया और काशी की पवित्र पुरियाँ हैं। इसी काशी में ज्ञानसूर्य का सबसे पहले प्रकाश हुआ। भगवान् शंकर यहाँ विश्वनाथ के नाम से सदा निवास करते आये हैं। भगवान् शंकर की कृपा से यहीं पर शंकराचार्य के ज्ञानचक्षु उन्मिषित हुए। यहीं पर वैयाकरण-शिरोमणि भट्टोजीदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी की रचना की। आधुनिक काल में यहीं पर बापूदेव शास्त्री और शिवकुमार शास्त्री की कीर्ति देशदेशांतरों तक फैली। इस पवित्र पुरी में महामना मदन मोहन मालवीयजी ने आर्यसंस्कृति और साहित्य की शिक्षा के लिये हिन्दूविश्वविद्यालय की स्थापना की है, यहीं से थोड़ी दूर पर सारनाथ में भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रथम उपदेश दिया था। इसी पावन प्रान्त में अमर कवि तुलसीदास ने जन्म लिया था, जिनका रामचरित-मानस आज हिन्दू जनता के हृदय का हार हो रहा है। इसी के अन्तर्गत हिमालय शैलमाला के अंचल में बदरीनाथ और केदारनाथ नामक पवित्र धाम हैं।

संयुक्तप्रान्त के पूर्व में बिहारप्रान्त है, जहाँ जनक जैसे कर्मयोगी राजा और याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मनिष्ठ महर्षि हुए। भगवती सीता ने यहीं जन्म लिया था, यहीं पर जैन-धर्म के तीर्थंकर भगवान् महावीर अवतरित हुए थे, अजातशत्रु और चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे प्रतापी सम्राट् यहाँ पर हुए। यहीं पर प्रियदर्शी महाराज अशोक ने राज्य किया जो संसार के सबसे बड़े आदर्श सम्राट् माने जाते हैं, उन्होंने लौकिक विजय की अपेक्षा धर्म-विजय को महत्त्व दिया और लंका, यूनान तथा मिश्र जैसे सुदूर देशों में करुणापूर्ण बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये बौद्ध भिक्षुओं को भेजा था, यहीं पर हिन्दूसंकृति के उद्धारक समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे परम प्रतापी सम्राट् हुए, जिनका राज्यकाल भारतवर्ष का स्वर्णयुग समझा जाता है। यहीं पर आर्यभट, महाकवि बाण और मैथिलकोकिल विद्यापति ने जन्म लिया था। पाटलिपुत्र नगर इन समस्त सम्राटों की राजधानी रही और इस समय भी पटना नाम से बिहार का मुख्य नगर है। गया हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ है, जहाँ पिण्डदान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। राजगृह में जैनों का तीर्थ पार्श्वनाथ है। बिहार के दक्षिण में कलिंगप्रान्त है, जहाँ जगन्नाथपुरी का पवित्र धाम है।

बिहार के पूव में वंग देश है, जो अपनी प्राकृतिक शोभा के लियेप्रसिद्धहै। इसी भूमि में भगवान् चैतन्य ने अवतार लेकर भक्ति का विस्तार किया था। चंडीदास और कृत्तिवास जैसे महाकवि और जीमूतवाहन, रघुनन्दन जैसे धर्मशास्त्रकार यहीं उत्पन्न हुए थे। भारत का राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' पहले पहल यहीं गाया गया। यहीं विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर की जन्मभूमि है। वंग के पूर्व में कामरूप (आसाम) प्रान्त है, जहाँ कामाख्या देवी

का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहीं महानगर कलकत्ता है, जो अंग्रेज़ी राज्य में लन्दन के पश्चात् सब से बड़ा नगर है। यहीं गंगा और ब्रह्मपुत्र का संगम समुद्र के साथ होता है। गंगासागर-संगम पवित्र तीर्थस्थान है।

मध्यभारत में मालवा देश है। यहाँ की प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी है, जहाँ संवत् चलानेवाले महादानी महाराज विक्रमादित्य हुए। इन्हीं महाराज के दरबार में संस्कृत भाषा के सबसे बड़े महाकवि कालिदास रहते थे, जिनकी कीर्ति आज देश-देशान्तरों में गूँज रही है। यहीं पर हूणों के नाशकर्त्ता महाराज यशोधर्मा हुए थे। यहाँ पर महाकालेश्वर का महान् तीर्थ है। यहीं धारा नगरी है, जहाँ सरस्वती के अवतार महाराज भोज राज्य करते थे। मालव के पूर्व में दशार्ण देश है, जो वीर आल्हा-ऊदल और छत्रसाल की क्रीड़ाभूमि था। आजकल यहाँ पर इन्दौर, ग्वालियर, रीवाँ आदि कई एक देशी राज्य हैं।

मध्यभारत के दक्षिण में मध्यप्रदेश है। यहाँ विन्धाचल और पारियात्र (सतपुड़ा) पर्वतों के बीच मेकलकुमारी नर्मदा बहती है, जिसके तट पर ओंकारेश्वर का तीर्थ है। मध्यप्रदेश के दक्षिण में विदर्भ (बरार) देश है, जहाँ दमयन्ती और रुक्मिणी ने जन्म लिया था। यहीं पर महाकवि भवभूति का जन्मस्थान है, महाकवि भारवि और दंडी की जन्मभूमि भी यहीं है। नागपुर, जबलपुर आदि इस प्रान्त के प्रमुख नगर हैं।

मध्यभारत के पश्चिम में गुजरात का महान् प्रान्त है। इसी के सौराष्ट्र नामक-खंड में भगवान् श्रीकृष्ण की द्वारिका है, जो हिन्दुधर्म के चार धामों में से एक है। यहीं प्रभास का प्रसिद्ध तीर्थ है, यहीं जैनों के गिरनार और शत्रुञ्जय तीर्थ हैं। इसी गुर्जर भूमि में कलिकाल के सर्वज्ञ महान् आचार्य हेमचन्द्र ने

जन्म लिया था। यहीं पर मोरवी और पोरबन्दर हैं, जहाँ आदर्श बालब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द और महामान्य महात्मा गाँधी का जन्म हुआ था। आजकल इस प्रान्त का मुख्य नगर अहमदाबाद है, जो साबरमती नदी के किनारे बसा है।

गुजरात के उत्तर में सिन्धु देश है, जहाँ के राजा जयद्रथ ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लिया था। यहीं पर कराँची नामक भारत का एक प्रमुख बन्दरगाह है जो व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र है। गुजारात के दक्षिण में पश्चिमीघाट अथवा सह्याद्रि पर्वत के दोनों ओर बसा हुआ महाराष्ट्रप्रान्त है, जहाँ नामदेव, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास जैसे अनेकों सन्त महात्मा उत्पन्न हुए। हिन्दूधर्म और हिन्दूसाम्राज्य के उद्धारक महाराज छत्रपति शिवाजी को कौन नहीं जानता! वे इसी भूमि के सपूत थे। बाजीराव और नाना फड़नवीस जैसे राज्यसंस्थापक और कुशल राजनीतिज्ञों को इस भूमि ने जन्म दिया है। पंचवटी, पंढरपुर जैसे अनेक तीर्थ यहाँ स्थित हैं। इसी में बम्बई * का सुन्दर बंदरगाह है, जो आधुनिक भारत का कलकत्ते के बाद सब से बड़ा शहर है। पूना इस प्रान्त का प्रमुख नगर है।

महाराष्ट्र के दक्षिणपूर्व में गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में विशाल आन्ध्र देश है, जहाँ के प्रतापी शालिवाहन राजाओं की विजयपताका मगध तक फहरा चुकी थी। श्रीशैल, द्राक्षाराम और कालेश्वर के महालिंग इसी देश में हैं। इसी प्रान्त में हैदराबाद का राज्य है। महाराष्ट्र के दक्षिण में कर्नाटक प्रान्त है, जहाँ मल्लिनाथ के समान अद्वितीय टीकाकार ने जन्म

* इस समय गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटक मिलकर एक ही बम्बई नामक प्रान्त बनाते हैं।

लिया था। कर्णाटक के दक्षिण में केरल प्रान्त है जो भगवान् शंकराचार्य की जन्मभूमि है।

आन्ध्र के दक्षिण में द्रविड़ देश× है, जहाँ कावेरी नदी बहती है। यहीं कांची और रामेश्वरम् के पवित्र तीर्थ हैं। इसी भूमि में भगवान् रामानुजाचार्य ने जन्म लेकर वैष्णवधर्म की ध्वजा फहरायी थी। यहीं तिरुवल्लुवर सदृश अमर कवि हुआ, जिसकी वाणी ने सहस्त्रों मनुष्यों को शान्ति और नीति की शिक्षा दी है। इसी में मद्रास का सुप्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह है।

असंख्य महान् विद्वानों, अमर कवियों, सच्चे पराक्रमी वीरों, सिद्ध महात्माओं और पतिव्रत धर्म की आदर्श सती-साध्वी वीरांगनाओं को जन्म देनेवाली इस महान् भारतभूमि को धन्य है! किसका मस्तक इसके सामने आदर के साथ नहीं झुक जायगा? देवता तक इसके गीत गाते हैं और इसमें जन्म लेने की इच्छा करते हैं। इसका बाह्य रूप भी कितना सुन्दर है। प्रकृति के जितने विविध रूप यहाँ देखने को मिलते हैं, उतने किस देश में मिलेंगे? गगनचुंबी विशाल हिमाच्छादित हिमालय इसका शुभ्र मुकुट है, रत्नाकर इसके चरण पखारकर अपने को धन्य समझता है। धन्य है यह पावन भूमि और धन्य हैं वे लोग जो इस जननी की गोदी में क्रीड़ा करते हैं!

प्रश्न

१—भारतवर्ष में कौन-कौन सी मुख्य नदियाँ हैं? उनके विषय में तुम क्या जानते हो?

२—इसमें कितने प्रान्त हैं? वहाँ के किन-किन स्थानों की प्रसिद्धि है?

३—इस देश में कौन-कौन लोग प्रसिद्ध हो गये हैं, जिनसे देश का नाम हुआ?

× इस समय आन्ध्र, द्रविड़, केरल एक ही मद्रासप्रान्त में शामिल हैं।

४—पतञ्जलि, भरत, अभिमन्यु, माघ, विक्रमादित्य के विषय में तुम क्या जानते हो? संक्षेप में लिखो।

१५—महाराणा प्रताप और मानसिंह

'मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुखं न च सुखम्'

स्थान—प्रताप की कुटी

[व्रती वेश में राणा प्रताप और कुमार अमर सिंह]

प्रताप—आश्चर्य है, अमर! राजा मान आज यकायक इधर रास्ता कैसे भूल गये! (कुछ सोचकर) हूँ! इसमें अवश्य कोई गूढ़ रहस्य है! वे कहाँ से आ रहे हैं, कुछ मालूम हुआ?

अमर—वे शोलापुर-संग्राम में विजय पाकर मेवाड़ के महाराणा के दर्शन करने इधर चले आये हैं। भला इसमें कौन-सा रहस्य हो सकता है, पिताजी?

प्रताप—अभी तुम भोले हो अमर। पददलित चित्तौड़ के हतभाग्य राणा को अपना विजयवैभव दिखाकर प्रभावित करना क्या रहस्य नहीं है? मेवाड़ का आतिथ्य स्वीकार कर, पवित्र सीसौदियावंस से भोजन व्यवहार कर, दासता के कलंक को धोने की चेष्टा कर, सारी राजपूतजाति के संमुख अपने को उज्ज्वल प्रमाणित करने में क्या मानसिंह की कूटनीति नहीं है?

अमर—तो क्या उनका सत्कार न होगा?

प्रताप—क्यों न होगा? जिस प्रकार वे हमारे अतिथि हुए हैं, उसी प्रकार उनका सत्कार भी अवश्य होगा और वह तुम्हीं को करना होगा।

अमर—जो आज्ञा ! (जाने को उद्यत होता है)

प्रताप—ठहरो ! पहले उनके सत्कार की विधि तो सीख जाओ। (कान में कुछ देर तक कुछ कहकर प्रस्थान)

अमर—द्वारपाल !

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—क्या आज्ञा है, पृथ्वीनाथ !

अमर—हमारी कुटी के सामने वाले मैदान में तंबू तनवाकर खूब राजसी ठाटबाट और भड़कीली सजावट करवा रक्खो। सोने के बरतनों में बादशाही भोजन भरवा रक्खो ! जाओ, जल्दी करो, वहीं हम राजा मानसिंह को लेकर अभी आते हैं।

(द्वारपाल चलने लगता है)

अमर—हाँ, एक बात और ! जब राजा मान भोजन करके चल दें तो सारा सामान उदयसागर के अतल जल में विसर्जित कर देना। गंगाजल से धुलवाकर वहाँ की सारी भूमि पवित्र करवा देना ! समझे ! पिताजी की यही आज्ञा है। भारत को गुलामी की जंजीरों से जकड़ने वाले, विदेशियों की जूठन खानेवाले देशद्रोही के स्पर्श का एक भी कण न रहने पाये, नहीं तो पिताजी नाराज़ होंगे।

द्वारपाल—जो आज्ञा अन्नदाता !

(प्रस्थान)

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराजकुमार की जय हो ! राजा मानसिंह पधारते हैं।

अमर—उन्हें सादर लिवा लाओ और हमारे सभासदों को भी संवाद दो।

(प्रणाम करके दूत का प्रस्थान)

अमर—(स्वगत) पिताजी ने न आने का कारण क्या बताया था ? (याद करके) हाँ—आँ—आँ—ठीक !

(एक ओर से मानसिंह का अपने साथियों सहित प्रवेश और दूसरी ओर से प्रताप के सभासदों का अमर के पार्श्व में आकर खड़े होना। अमर का मानसिंह की अगवानी करना)

अमर—अंबर के महाराज ! स्वागत है, आपने इस दीन-हीन मेवाड़ पर बड़ी कृपा की।

मान—पुण्यश्लोक महाराणा प्रताप के दर्शनों की तीव्र लालसा ही यहाँ तक खींच लायी है, कुमार !

अमर—महाराज, गरीबों की इस कुटी में आपके योग्य स्वागतसामग्री का सर्वथा अभाव है ! चलिये, आपके लिये डेरों में प्रबन्ध किया गया है।

(सहसा जंगल का परदा हटाकर सामने राजसी तंबू दिखायी देता है)

अमर—पधारिये, महाराज !

(मानसिंह चकित होते हैं, अमर उन्हें सोने के थाल के पास ले जाते हैं)

अमर—गरीबों के घर की रूखी-सूखी ग्रहण कीजिये !

मान—(ठंढी साँस लेकर) हाय, यदि मुझे सचमुच रूखी-सूखी ही मिलती तो मैं धन्य हो जाता, कुमार ! (बात का रुख बदल कर) खैर, यह बताओ, महाराणा ने अभी तक दर्शन क्यों नहीं दिये ?

अमर—वे जरा अस्वस्थ हैं, महाराज !

मान—(व्यंग से) आज ही अस्वस्थ हो गये हैं या पहले ही से थे ! महाराज के इस आकस्मिक अस्वास्थ्य का रहस्य कुछ-

कुछ समझा जा सकता है। महाराणा ने क्या मुझे बिलकुल मूर्ख समझ रक्खा है, कुमार!

अमर—उनके मुँह से तो मैंने यह कभी नहीं सुना।

मान—तो क्या महाराणा मेरे साथ भोजन नहीं करेंगे?

अमर—वे विवश हैं, महाराज!

मान—तो मैं भी विवश हूँ, कुमार! महलों के पकवानों से ऊबकर मैं राणा की रूखी-सूखी खाने आया था। संसार के मानसंमान से घबराकर मैं राणा का प्रेम पाने आया था! राणा ने मुझे इतना घृणित समझा! मेरा मुँह देखना भी पाप समझा! क्या मैं कुत्ता हूँ कुमार, जो राणा दूर ही से मेरे लिये टुकड़े फेंक रहे हैं? मैं कोई सामान्य राजपूत नहीं हूँ। भारत के बड़े से बड़े संग्रामों में मैंने विजय पायी है। भारतसम्राट् की रण-नौका का मैं सर्वोत्तम खिवैया हूँ। आज सारा भारत जिसके इंगित पर नाच रहा है, उसीका मैं सर्वोच्च सेनापति हूँ—सर्वश्रेष्ठ सखा हूँ! इन भुजाओं से मैंने बड़े बड़े गर्वोन्नत मस्तक झुका दिये हैं! मेरे साथ राणा का व्यवहार! इतनी घृणा! इतनी उपेक्षा! क्या उदार मेवाड़ का परंपरागत अतिथिसत्कार यही है?

अमर—अप्रसन्न न हों महाराज, इस सारी स्वागत-सामग्री को आपके योग्य बनाने में हम लोगों ने बहुत श्रम किया है! इसे विफल न कीजिये। विलम्ब हो रहा है, भोजन कीजिये!

मान—भोजन! तुम्हें लाज नहीं आती, अमरसिंह! क्या मानसिंह ऐसे भोजन के लिए तरस रहा था? इस भोजन में हृदय नहीं है, कुमार। इसके कण कण से घृणा टपक रही है। मैं भोजन न करूँगा। कहाँ हैं राणा प्रताप? मैं उनसे एक बार अवश्य मिलूँगा। बस कह चुका, बिना मिले न जाऊँगा। राणा

की इतनी स्पर्धा ! मेवाड़ के छोटे से शासक का इतना साहस ! भारत-सम्राट् के दाहिने हाथ मानसिंह का अपमान ! सावधान ! सरदारो, सावधान ! जाकर प्रताप से कह दो, समूचे मेवाड़ को जलाकर राख कर देने की शक्ति अकेले इस मानसिंह के इंगित में है ।

(प्रताप का प्रवेश)

प्रताप—(तलवार तानकर) और मानसिंह के फूफा सम्राट् अकबर को नाकों चने चबाने की शक्ति सीसौदिया-वंश की इस करारी करवाल में है। मानसिंह ! क्या समझ रखा था कि मेवाड़ की ध्वजा तुम्हारे वैभव पर मोहित होकर तुम्हारे चरणों में झुक जायगी ! क्या तुमने समझ रखा था कि पवित्र सीसौदियावंश अपना गौरव मुग़लों की जूठन खानेवाले देशद्रोही के चरणों तले बिछा देगा ! प्रताप के साथ भोजन करने की तुम्हारी कुटिल अभिलाषा ! तुम्हारा कितना बड़ा भ्रम था, मानसिंह कुछ समझे ?

मान—खूब समझ रहा हूँ—सब समझ रहा हूँ, प्रताप ! मैं क्या समझ रहा हूँ इसका उत्तर समय देगा और देगा मेवाड़ के विध्वस्त खँडहरों का हाहाकार !

(प्रस्थानोद्यत)

प्रताप—जा, जा, ! बकवादी ! देशद्रोही ! मुग़लों की चरण-रज मस्तक पर लगाकर राजस्थान के तिलक मेवाड़ को भय दिखाने आया है !

[पटाक्षेप]

प्रश्न

१—महाराणा प्रताप कौन थे ? ये अकबर से क्यों शत्रुता रखते थे ?
२—मानसिंह के साथ इन्होंने भोजन क्यों नहीं किया ?

१६—ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य के महत्त्व को सभी मानते हैं। संसार के जितने धर्म हैं, वे सब इसके गुणों का वर्णन करते हैं, और ब्रह्मचर्य पालन को अपने देश की धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति का मुख्य साधन समझते हैं। हमारे पूज्य महर्षियों ने इसकी बड़ी महिमा गाई है और चार आश्रमों में से इसके लिये पहला स्थान दिया है। विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा भली-भाँति समझनी चाहिये और धर्मशास्त्रों में बताये हुए नियमों का पालन करते हुए इसकी साधना करनी चाहिये। विद्याभ्यास में जितनी सहायता इस पवित्र व्रत से मिलती है, उतनी और किसी उपाय से नहीं। ब्रह्मचर्य की रक्षा करनेवाले मनुष्य को दिव्यता प्राप्त होती है और साधना पूरी होने पर परम गति भी उसे मिलती है। भगवान् शंकर ने कहा है कि ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है। जिसने अपने वीर्य को वश में कर लिया है, वह देव-स्वरूप है, मनुष्य नहीं। जिसने ब्रह्मचर्य जैसे तप का अनुष्ठान किया है और जिसके हृदय में ब्रह्मचर्य रूपी सत्य विराजमान है, उसकी सदा विजय होती है। जो लोग विधिवत् ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे चिरायु, सुन्दर, शारीरिक बल से युक्त, दृढ़-कर्तव्य, तेजस्वी एवं पराक्रमी होते हैं। सच्चरित्र की पहली और सबसे मजबूत सीढ़ी ब्रह्मचर्य है। इसे पालन करनेवाला मनुष्य बड़े-बड़ों से मान और प्रतिष्ठा पाता है।

भगवान् धन्वन्तरि महाराज अपने आश्रम में शिष्यों को आयुर्वेद का उपदेश कर रहे थे। एक उत्साही शिष्य ने कहा कि "भगवन्! आप पीयूषपाणि हैं और आप जैसे अनुभवी और सिद्ध वैद्य इस संसार में नहीं हैं। आपकी विद्या में ऐसा बल

है कि एक बार अपनी दिव्यौषधि के प्रभाव से मृतक को भी जीवित कर सकते हैं। इस लिये दया करके आप अपना सब से अनुभूत और उत्तम उपाय बतावें, जिसके सेवन से सब प्रकार के रोग नष्ट हो जायँ और जिससे मनुष्य का सर्वथा कल्याण ही हो।" उत्तर में भगवान् धन्वन्तरि ने प्रसन्न होकर कहा कि "हे वत्स ! मैं तुम्हारे प्रश्न से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और एक ऐसा उपचार बतलाता हूँ कि जिसकी सत्यता में मुझे किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं है। जरा, मरण और सब प्रकार की व्याधियों को नाश करने वाला अमृत-रूपी उपचार ब्रह्मचर्य है। जो शान्ति सौन्दर्य, स्मृति, ज्ञान और आरोग्य चाहता है, वह इस सर्वोत्तम धर्म का पालन करे। ब्रह्मचर्य सबसे उत्तम ज्ञान है, अपरिमित बल है। हमारा आत्मा निश्चय ही ब्रह्मचर्यमय है और यह मनुष्य शरीर में ब्रह्मचर्य बल से ही रहता है।" यह उपदेश सुनकर सब शिष्य आनन्द में मग्न हो गये और बहुतों ने तो आजन्म इस व्रत के धारण की कठिन प्रतिज्ञा की।

ब्रह्मचर्य में क्या प्रभाव है, इसका अनुमान दो ही दृष्टान्तों से हो जायगा। हनुमान्जी का ध्यान करते ही उनके गुणों और अपूर्व बल का आभास हृदय में आ जाता है। उनमें कितना बल था, कितनी उत्तम बुद्धि थी और कैसा अनुपम साहस था ! जिन कार्यों को वे हँसी-हँसी में कर गये हैं, उनके सम्पन्न करने में सारा जीवन बिता देने पर भी आज कोई नहीं कर सकता है। उनमें कितना धैर्य था, कितना विलक्षण बुद्धिबल था ! इस सब का एकमात्र कारण था, उनका ब्रह्मचर्य व्रत। दूसरे ब्रम्हचारी थे भीष्म पितामह, जिनकी कथा महाभारत में प्रसिद्ध है। इसी कठिन व्रत के पालने के कारण उनकी स्वेच्छामृत्यु हुई है। उनका कितना पराक्रम था ! भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर

से कहा था कि यदि अपने जीवन की सफलता के लिये मार्ग का पता लगाना हो तो भीष्म पितामह से उपदेश लो। जो उपदेश उन्होंने अपनी मृतशय्या पर से दिया, उसका आज भी बड़ा महत्त्व है। उस उपदेश को देखने से पता चलता है कि उनके पास ज्ञान का कितना बड़ा भण्डार था। प्रत्येक विषय पर उन्होंने उपदेश दिया है और विशेष कर आयुष्य-सम्बन्धी नियम तो बड़े ही उपयोगी हैं। ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में भी उन्होंने कहा है कि "जो आजीवन ब्रह्मचारी रहता है, उसे संसार में कुछ भी दुःख नहीं होता।"

ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यह है कि सब नियमों का पालन करते हुए अपनी शक्तियों को विद्या और ज्ञान की वृद्धि में लगा दे। ब्रह्म का अर्थ है वेदों की प्राप्ति, जिसको ज्ञान भी कहते हैं। क्योंकि सब ज्ञान वेद से ही प्राप्त होते हैं। उसके अनुसार आचरण करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। वीर्य रक्षा इसका प्रधान अंग है। ब्रह्मचारी के लिये हमारे धर्मशास्त्रों में विस्तृत नियमों का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम तो ब्रह्मचारी को एकान्त वास मना है। उसको चाहिये कि अपने गुरु के पास रहे और आश्रम के नियमों का पालन करे! सत्संगति में ही समय व्यतीत करे और गुरुजनों की सेवा एवं स्वाध्याय के अतिरिक्त व्यर्थ की बातों से अपने को सदा दूर रखे। ज्ञान की वृद्धि के लिये विद्याभ्यास करे। अपनी इन्द्रियों को वश में रख-कर तप की वृद्धि के लिये नित्य स्नान से शुद्ध होकर उसको देवा-राधना करना चाहिये। सदा गुरु की आज्ञा माननी चाहिये और गुरु में विशेष भक्ति रखनी चाहिये। विद्योपार्जन के लिये गुरु के पास नम्र भाव से जाना चाहिये। शरीर और वचन में नम्रता का होना सर्वथा वाञ्छनीय है; किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि

नम्रता में दीनता न आने पावे। दीन मनुष्य में आत्मबल का ह्रास हो जाता है। गुरुनिन्दा कभी नहीं करनी चाहिये और यदि कहीं निन्दा हो रही हो तो वहाँ से अन्यत्र चले जाना चाहिये। गुरुनिन्दा को सुनना भी नहीं चाहिये। सदा सूर्योदय से पूर्व ही उठना चाहिये। ऐसा न करने से मन मलीन हो जाता है और ब्रह्मचर्य में बाधा होती है। ब्रह्मचारी को सादा जीवन व्यतीत करना चाहिये। तड़क-भड़क के पास नहीं जाना चाहिये। वस्त्र स्वच्छ हों; किन्तु वेशभूषा शृङ्गार रहित हो। बालों में कंघी करना, इत्र लगाना, गंध-माला आदि का सेवन करना ब्रह्मचारी के लिये वर्जित है। उसको मद्य मांस का कभी सेवन नहीं करना चाहिये और भोजन में उत्तेजक पदार्थ का वर्जन करना उचित है। हिंसावृत्ति से सर्वथा दूर रहना चाहिये। नाच गाने से सदा विमुख रहना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणों को पास फटकने नहीं देना चाहिये। झूठ बोलना और जुआ खेलना बड़े ही निन्द्य कर्म हैं, इनसे बचना चाहिये। ब्रह्मचारी को सत्यवादी और दयाशील होना चाहिये। अच्छे विद्वान् और सच्चरित्र पुरुषों का सत्संग करना चाहिये, जिससे चरित्रबल और विद्याभ्यास में उन्नति हो। व्यर्थ की गप्पाष्टक और कुसंगति में समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

इन नियमों का पालन करने से प्रत्येक पुरुष का कल्याण हो सकता है! क्योंकि ब्रह्मचर्य व्रत सब के लिये हितकर है; किन्तु विद्यार्थियों के लिये इसका पालन करना आवश्यक है और विशेष लाभदायक है।

प्रश्न

१—भगवान् धन्वंतरी महाराज ने अपने शिष्यों के कल्याण के लिये कौन-सा उपाय बताया?

२—भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य के विषय में क्या कहा ?

३—अपने पूर्वजों की भाँति हम भी ज्ञान और अतुल शक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

४—प्रातःकाल से सायंकाल तक समय कैसे बिताना चाहिये ?

५—विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य के लिये शास्त्रोक्त किन नियमों का पालन करना आवश्यक है ?

६—संध्योपासन से क्या लाभ होता है ?

१७—वाराणंसी

भारतवर्ष में वाराणसी नगरी बहुत प्राचीन है। आजकल इसको बनारस कहते हैं और संयुक्तप्रान्त के बड़े बड़े नगरों में इसकी गिनती है। काशी भी इसी का नाम है। इसकी प्राचीनता के अनेक प्रमाण पुराणादि ग्रन्थों में मिलते हैं और कहा जाता है कि परम धार्मिक राजा दिवोदास से भगवान् शंकर ने यह नगरी प्राप्त की थी और अपने कुटुम्बियों को ही इस नगरी की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया था। इसलिये भगवान् शंकर का तो इस नगरी पर पूर्ण आधिपत्य है और भगवती अन्नपूर्णा, जगन्माता दुर्गा, कालभैरव, ढुंढिराज गणेश इस नगरी के प्रधान देवता एवं रक्षक हैं।

धार्मिक दृष्टि से तो इस नगरी का महत्त्व अपरिमित है ही; परन्तु विद्या की दृष्टि से भी वाराणसी प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध रही है। भारतवर्ष के बड़े बड़े विद्यापीठों में वाराणसी का महत्त्व सब से ऊपर रहा है। मिथिला, नालन्द, उज्जयिनी, काश्मीर, कान्यकुब्ज बड़े विद्यापीठ थे; परन्तु इन सब से अधिक मान काशी का था। बड़े बड़े राजा, विद्वान, योगी, धार्मिक नेता, आचार्य आदि सब काशी में आकर दीक्षा लेते थे और तब उन

का ज्ञान पूर्ण परिपक्व समझा जाता था। सारे शास्त्रों के ज्ञान का भाण्डार काशी समझी जाती थी और यदि कोई विद्वान् शास्त्रार्थ में काशी के पंडितों को परास्त कर लेता था तो उसको दिग्विजयी पद प्राप्त हो जाता था। कोई ऐसा शास्त्र नहीं था, जिसके पारंगत विद्वान् काशी में वर्तमान न हों और उसके अध्ययन के लिये दूर दूर से छात्र काशी में आकर जमा न होते हों। काशी की यह मर्यादा परम्परा से चली आती है और इसका निर्वाह अब तक होता चला आ रहा है।

यह प्रायः सब को विदित है कि राजा हरिश्चन्द्र की धर्म-परीक्षा काशी में ही हुई थी और यहीं उनको मोक्ष हुआ था। अठारह पुराणों के कर्त्ता भगवान् वेदव्यास भी काशी में ही उत्पन्न हुए थे। योगशास्त्र के प्रवर्त्तक महामुनि पतञ्जलि काशी-वासी थे। विष्णु के अवतार आयुर्वेद के प्रवर्त्तक भगवान् धन्व-न्तरि ने काशी में ही अपनी विद्या का वितरण किया था।

बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एवं विष्णु के अवतार भगवान् बुद्ध ने काशी में आकर उपदेश किया था और वह स्थान अब सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। जैन सम्प्रदाय का भी काशी एक धार्मिक केन्द्र है। कबीर सम्प्रदाय का भी काशी आदितीर्थ है।

इस दृष्टि से काशी हिन्दू, बौद्ध, जैनधर्म तथा अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदायों का मुख्य धार्मिक तीर्थ भी है।

सनातनधर्म के शैव, वैष्णव आदि अवांतर सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी काशी में आकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। भगवान् शङ्कर को तत्त्वबोध काशी में ही हुआ था। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने आकर काशी में चिरकाल तक निवास किया और यहीं पर वह अपने

सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते रहे। चैतन्य महाप्रभु भी काशी में आकर भक्तिमार्ग का उपदेश देते रहे।

मुसलमानों की राजसत्ता के समय मुसलमानों की तरफ़ से हिन्दुओं के मन्दिरों पर काशी में अनेक आक्रमण हुए। विश्वनाथजी के मन्दिर को कई बार तोड़ा गया और वहाँ मस्जिद बनायी गयी। परन्तु मुसलमानी राजसत्ता कमज़ोर होने पर कई धर्मप्राण मनुष्यों के प्रयत्न से मन्दिर का पुनरुद्धार हुआ और विश्वनाथ महादेव की मूर्ति का संस्थापन किया गया। आजकल विश्वनाथजी का जो मन्दिर है, वह इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होलकर का बनाया हुआ है और सोने का शिखर सिक्खों के राजा महाराज रणजीतसिंह का बनवाया हुआ है।

प्रायः सारे शास्त्रों के पारंगत विद्वान् काशी में हो चुके हैं। व्याकरण के आचार्य पतञ्जलि के अतिरिक्त काशिकावृत्ति के कर्त्ता वामन व जयादित्य काशी में कुछ काल तक निवास करते रहे हैं। महावैयाकरण शेषकृष्ण, सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजी दीक्षित; नागेशभट्ट काशी में ही रहते थे। अलंकार शास्त्र के आचार्य व अनुपम प्रतिभासम्पन्न कविवर जगन्नाथ पंडितराज काशीनिवासी थे और काशी में "गैबी" नामक कुँआँ उनके नाम से विशेष रूप से सम्बन्धित है।

वेदान्त शास्त्र के धुरंधर आचार्यों में मधुसूदन सरस्वती, नृसिंहाश्रम स्वामी व काष्ठजिह्वा स्वामी काशीनिवासी थे।

ज्योतिष शास्त्र के आचार्य कमलाकर, रङ्गनाथ, नीलकण्ठ दैवज्ञ आदि काशीनिवासी थे।

धर्मशास्त्र में नारायण, कमलाकर, शंकर, नीलकण्ठ, दिनकर आदि भट्टवंशीय विद्वान् काशीनिवासी थे।

मीमांसा में मंडन व शम्भुभट्ट, पुराण में नीलकण्ठ चतुर्धर आदि, सांख्य में विज्ञानभिक्षु, भावेश व गणेश दीक्षित; न्याय में भवानन्द सिद्धान्तवागीश, विश्वनाथ पंचानन, विद्यानिवास भट्टाचार्य, महादेव, दिनकर भारद्वाज, महानैयायिक शंकर मिश्र आदि विद्वान् काशी के ही थे।

आधुनिक काल में भी काशी में चमत्कारी पण्डितों की कमी नहीं रही है। प्रायः सारे शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित यहाँ वर्तमान रहे हैं और उनमें से सुधाकर द्विवेदी, गंगाधर शास्त्री, बापूदेव शास्त्री, वेताल विनायक शास्त्री, महादेव शास्त्री घाटे, शिवकुमार शास्त्री, दामोदर शास्त्री, रत्नगोपाल शास्त्री, गोस्वामी दामोदरलालजी शास्त्री, बाल सरस्वती, वामाचरण भट्टाचार्य, नित्यानन्द पर्वतीय, तात्या शास्त्री इत्यादि गौरवान्वित पंडित मुख्य हो गये हैं।

विद्वानों के अतिरिक्त कई महात्माओं ने भी काशी में रहकर मोक्ष प्राप्त किया है। महात्मा कबीर काशी में पैदा हुए थे और इनका स्थान यहाँ 'कबीरचौरा' के नाम से प्रसिद्ध है। भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी ने अपने जीवन का अधिक भाग काशी में बिताया। तुलसीघाट पर वह कोठरी जहाँ उन्होंने 'विनयपत्रिका' जैसे रत्न को उत्पन्न किया, काशी में अब भी सुरक्षित है और इनकी पवित्र स्मृति की द्योतक है। परमहंस तैलंग स्वामी, स्वामी भास्करानन्द व स्वामी विशुद्धानन्द भी काशी के ही निवासी थे।

आजकल भी काशी अपनी मर्यादा का पूर्ववत् पालन कर रही है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसा उत्तम विद्यापीठ, जिसकी कृति में महामना पं० मदनमोहन मालवीय जैसे तपस्वी देशसेवक ने अपना तन मन धन अर्पण कर दिया, काशी को

ही सुशोभित कर रहा है। गवर्नमेण्ट का भी एक कालेज व एक उत्तम पुस्तकालय 'सरस्वती-भवन' काशी में है। अन्य छोटे-मोटे स्कूलों एवं पाठशालाओं की तो कोई गिनती ही नहीं है। देश की राजनैतिक शिक्षा के लिये भी प्रसिद्ध दानवीर विद्याप्रेमी सेठ शिवप्रसाद गुप्त की ओर से खोला हुआ एक बड़ा विद्यालय 'काशीविद्यापीठ' भी काशी में वर्त्तमान है।

काशी की प्राकृतिक स्थिति भी बहुत उत्तम है। भगवती जाह्नवी के किनारे अर्द्धचन्द्राकार काशी बसी हुई है और नगरी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहुत सुन्दर मजबूत पत्थर के विशाल घाट बने हुए हैं। पंचगंगाघाट, मणिकर्णिका, दशाश्वमेध, केदार एवं तुलसीघाट प्रसिद्ध घाट हैं और इनपर स्नानार्थ यात्रियों तथा नगरनिवासियों की भीड़ लगी रहती है। पंचगंगाघाट पर मस्जिद बनी हुई है, जिसके अन्दर पत्थर की बहुत ऊँची छत्रियाँ बनी हुई हैं जो बहुत दूर तक दृष्टिगोचर होती हैं। इनको "माधवराय का धरहरा" कहते हैं। राजघाट के पास एक विशाल रेलवे का पुल बना हुआ है, जिसको डफरिनब्रिज कहते हैं और यह पुल हिन्दुस्तान के रेलवेपुलों में एक मुख्य पुल है। मानमन्दिरघाट के पास एक विशाल ज्योतिर्वीक्षण भवन भी बना हुआ है, जिसको "मानमन्दिर" कहते हैं। जयपुर राज्याधिपति महाराज जयसिंह ने भारतवर्ष में चार स्थानों पर ऐसे मन्दिर बनवाये थे, यथा—काशी, उज्जयिनी, दिल्ली और जयपुर। इनकी निर्माणकला बड़ी विलक्षण है। आजकल तो इन मन्दिरों में बने हुए यंत्रों का पूर्णतया समझना भी दुरूह है।

सारनाथ में सम्राट अशोक का बनवाया हुआ एक बड़ा भारी स्तूप है जो कि देखने योग्य है।

इन सब के अतिरिक्त काशी व्यापार का भी केन्द्र है।

प्राचीन काल में गंगाजी में नावों के द्वारा यहाँ वाणिज् का आवागमन होता था और आजकल भी यहाँ रेशमी वस्त्रों का भारी व्यापार होता है।

हिन्दी-साहित्य के अनेक लब्धप्रतिष्ठ कवि एवं लेखकों को भी काशी ने जन्म दिया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को कौन नहीं जानता ! उनके जैसा अद्वितीय कवि उत्पन्न करने का सामर्थ्य काशी के सिवा और किस में हो सकता है। बदरीनारायण चौधरी, किशोरीलाल गोस्वामी, रामकृष्ण वर्मा, लाला भगवान-दीन, रायबहादुर श्यामसुन्दरदास आदि काशी की गोद में ही पलकर कीर्त्तिमान हुए हैं। मुंशी प्रेमचन्द जैसा उपन्यासलेखक भी काशी का ही पुत्र था।

सच है, काशी की महिमा अतुल एवं अटल है। क्या आश्चर्य है कि काशी में रहकर मुक्ति प्राप्त हो जाय ! निःसन्देह इसके दर्शनमात्र से संसारतरण हो सकता है। भगवान् शंकर भी तो कैलास जैसे सुरम्य एवं स्वर्गस्पर्धी स्थान का परित्याग कर सकुटुम्ब काशी में आ डटे हैं, सो निरर्थक ही नहीं है ! इसका रहस्य समझनेवाले समझते ही हैं। काशी ! वाराणसी ! तुझको अनेक प्रणाम !—तू "बनारस" है, तेरे यहाँ "रस" सदैव बना रहता है।

प्रश्न

१—अपनी भाषा में काशी नगरी का वर्णन करो।

२—काशी में कौन-कौन से प्रसिद्ध विद्वान हुए हैं ?

३—काशी के प्रसिद्ध विद्वानों के विषय में तुम क्या जानते हो ?

१८—भगवान् बुद्ध

आज से लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व कौशल राज्य की राजधानी कपिलवस्तु में शाक्यवंशीय महाप्रतापी महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। राजप्रासाद सर्वसुखसम्पन्न होते हुए भी महाराज को सूना दिखलाई पड़ता था; क्योंकि महाराज के कोई पुत्र न था, उनके विशाल सुखवैभव का कोई उत्तराधिकारी न था। पुत्रलाभ की मनोकामना से महाराज तथा महारानी ने आचार्यों के परामर्श से निराहार रहकर तप किया, जिससे उनका मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण हुआ। शुद्धोदन के पुत्रजन्म की कथा बड़ी रोचक है।

महारानी मायादेवी जब अपने पितृगृह को जाने लगीं तब मार्ग में लुम्बिनी के विशाल उद्यान में विश्रामार्थ ठहरीं। इसी पवित्र उद्यान में महारानी मायादेवी के गर्भ से हमारे चिर-विश्रुत भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ। मायादेवी अपने अद्वितीय पुत्र के भावी अनुपम विकास की चिन्ता भी न कर पायी थीं कि दैवदुर्विपाक से एक सप्ताह बाद ही उनका देहावसान हो गया। मातृवियोगी लाड़ले पुत्र के मनोरंजन तथा शिक्षा के लिये महाराज ने कुछ उठा न रखा। विमाता गोतमी ने तो उसका ऐसा लालन-पालन किया, जैसे वह उसका अपना ही पुत्र था। गोतमी सचमुच अपने को भूल सी गयी थी।

युवराज का राशिनाम भगवान् बुद्ध न था! यह तो उन्हें बड़े बड़े कायकष्ट तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने पर मिला। युवराज का जन्म-नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ ने अल्पकाल में ही तत्कालीन युवराजोपयोगी समस्त विद्याएँ सीख लीं। सर्वगुण-सम्पन्न होते हुए भी युवराज का मन उनमें लिप्त न था।

एक दिन राजाज्ञा प्राप्त कर अपने सारथी छंदक के साथ युवराज राजनगर देखने गये। इससे पहले उन्होंने नगर के विभिन्न दृश्य कभी न देखे थे। उनके लिये यह सब कुतूहल था। अचानक सामने की एक गली से किसी वृद्ध को लाठी के सहारे झुके हुए आते देख, युवराजने आश्चर्यचकित होकर सारथी से पूछा—"छंदक, यह कौन जीव है ?"

छंदक बोला—"युवराज, यह कोई वृद्ध है, जिसकी कमर वृद्धावस्था के कारण झुक गयी है और शरीर जर्जर हो गया है। विशेष अवस्था प्राप्त कर मनुष्य इसी प्रकार झुक जाता है।"

"तो क्या यह अवश्यम्भावी है, टल नहीं सकती ?"—युवराज ने पूछा। "हाँ, हम सभी को एक दिन इस अवस्था का सामना करना पड़ेगा। यह सभी के लिये अवश्यम्भावी है, युवराज !"—छंदक ने गम्भीरता से कहा।

भय से युवराज का विचारचक्र चलने लगा।

"तो क्या मेरी सुन्दरी गोपा इसी प्रकार रूपहीना, कृशगात्रा तथा जर्जरवदना हो जायगी।"

हृदय के अभ्यन्तर-प्रदेश से कोई जोर देकर बोला—"अवश्य"।

रथ कुछ ही आगे बढ़ पाया था कि क्रमशः एक रोगी तथा एक अरथी को देख युवराज ने बड़े कुतूहल से पूछा—"छंदक, और यह क्या है, इसके अंग-अंग से रक्त क्यों बह रहा है ? कंधों पर यह चार व्यक्ति क्या लिये जा रहे हैं तथा उसके पीछे यह रोदन क्यों किया जा रहा है ?"

"युवराज, यह तो शरीर के भोग हैं, जो सब शरीरधारियों को भोगने ही पड़ते हैं" छंदक ने वियोग भाव से कहते हुए फिर

मृतक की ओर संकेत कर कहा—"और यह अरथी किसी मृतक व्यक्ति की है, जिसकी आत्मा इस असार शरीर को छोड़कर चली गयी है। अब इसे दहन के लिये ले जा रहे हैं। प्रियजन उसके वियोग में रोदन कर रहे हैं। संसार का हृदय बड़ा करुणाकर है, युवराज! हम सब भी इसी प्रकार किसी दिन अपने प्रियजनों को रुदन करते हुए छोड़कर चले जायँगे।"

"यह भी आवश्यम्भावी है, छंदक?"—युवराज ने पूछा।

छंदक बोला—अवश्य, युवराज! अवश्य! जो जन्मा है, उसे तो मरना ही है।

चौराहे से राजमहल की ओर रथ मोड़ते समय किसी संन्यासी को, जिसके अंग-अंग से कान्ति निकल रही थी एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित देखकर रथ ठहराने का संकेत कर युवराज ने पूछा—"छंदक, यह तो कोई विचित्र पुरुष देख पड़ता है। इस प्रकार एकान्त स्थान में आँखें बन्द कर बैठने का क्या प्रयोजन है?"

छंदक ने उत्तर दिया—"यह एक संन्यासी है, जो इस क्षणभंगुर संसार की विषयवासनाओं को त्याग इन्द्रियदमन तथा गम्भीर चिन्तन द्वारा अखण्ड आनन्द को प्राप्त कर चुका है। इस संसार की कोई भी आकर्षक वस्तु अब उसे वापस नहीं ला सकती। कष्ट और चिन्ताओं से वह मुक्त हो गया है। यही एक मार्ग है, युवराज! जिसके द्वारा मनुष्य सांसारिक व्याधियों से निकलकर परमानन्द में मिल सकता है।"

संसारचित्रपट के चित्र तथा छन्दक की बातें युवराज के कोमल हृदय पर अक्षुण्ण रूप से बैठ गयीं।

× × ×

तब से आत्मचिन्तन में इसी प्रकार कितने ही वर्ष बीत

गये। उसने एक ही हुँकार में माया के सब बन्धन तोड़ डाले। आधी से ज्यादा रात बीत चुकी थी। युवराज ने गोपा के विलास भवन में प्रवेश किया। रत्नाभा में एक बड़े पर्यंक पर दो मन-मोही मुख देखकर युवराज सब कुछ हार गये। इतने दिनों का संचित ज्ञान माया की एक ही झलक में काफूर हो गया। युवराज को इस प्रकार सब कुछ खो बैठे देख हृदय के अन्तरतम प्रान्त से कोई बोला—"हैं, हैं, युवराज! यह सुन्दर मुखाकृतियाँ ही तो तुम्हारे बन्धन और पतन के कारण हैं।

युवराज जागे। उन्हीं पैरों उलटे मुड़े। स्थूल आँखों में से होकर एक चित्रपट हृदय पर प्रतिबिम्बित हुआ। युवराज ने देखा गोपा कह रही है—"मुझे छोड़ कहाँ जा रहे हो, युवराज! अभागे राहुल और गोपा को भी ले चलो, नाथ! हा, भँवर में इस प्रकार न छोड़ो, नाविक!"

युवराज बलात् उस समय मायाप्रकोष्ठ से पुखराज की धवल सीढ़ियों द्वारा नीचे उतर आये। आकाश तारों से भरा था। युवराज के ललाट पर भी प्रस्वेदकण दमक रहे थे। शीतल वायु के एक झोंके से युवराज होश में आये। युवराज और कुछ न बोले। पास के ही एक प्रकोष्ठपृष्ठ पर सोये व्यक्ति को जागृत कर बोले—"अश्व शीघ्र तैयार करो, छंदक! मुझे इसी समय किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना होगा। देखो, व्यर्थ कोई शब्द न होने पावे।"

* * *

प्रभात होने ही वाला था। युवराज और छन्दक कपिल-वस्तु से दूर महाराज शुद्धोदन की राज्यसीमा के बाहर जा पहुँचे। अश्व ठहराकर युवराज बोले—"छन्दक! जाओ, भवन

लौट जाओ। देखो, अब समय नहीं है, लो, यह वस्त्राभूषण भी लेते जाओ।

छन्दक काँप उठा। हृदय नेत्रों द्वारा बहने लगा। उसने युवराज को उषा के धुँधले प्रकाश में झिलमिले नेत्रों से देखकर कहा—"और आप, युवराज !"

"मैं, हाँ, मैं भी भवन लौटूँगा; परन्तु अभी नहीं—सत्यान्वेषण करने के बाद। तुम अभी लौट जाओ। मैं उस वस्तु की खोज में जा रहा हूँ, छन्दक ! जिससे जीव को सच्ची शांति तथा सांसारिक दुःखों से मुक्ति मिल सकती है और उसे प्राप्त कर ही लौटूँगा, ऐसे नहीं !"

यह कहते कहते युवराज सामने के एक घने कुञ्ज में अदृश हो गये।

वैशाली तथा राजगृह के तत्कालीन दर्शन एवं योग के प्रकाण्ड पण्डितों से अध्ययन करने पर भी जब इस राजवंशीय तरुण तपस्वी को शान्ति न मिली तब इसने विहारप्रान्त के एक भयंकर वन में कठोर तपश्चर्या आरम्भ कर दी। शरीर सूख गया। प्राण केवल नेत्र ही में अटके रहे। युवक तपस्वी की यह दशा देखकर वनवासिनी बालाएँ दूध तथा फलों से युवराज का शरीर सींचने लगीं। एक बार फिर युवराज तपस्वी की आँखों में राजप्रासाद का सुखवैभव नाचने लगा। पर वे न डिगे। अपने गुरु को वनबालाओं के हाथ से पयःपान करते देख युवराज के शिष्यों ने उन्हें त्याग दिया। युवराज ने भी यह स्वागत भिक्षा श्रेयस्कर न समझी; पर करते ही क्या। शरीर में कोई भी शक्ति तो अवशेष रह नहीं गयी थी। लोकलाज की रक्षा के लिये उन्हें वस्त्र आवश्यक प्रतीत हुआ। वहाँ वस्त्र कहाँ

था! किसी प्रकार रेंगते हुए पास के एक श्मशान में जा पहुँचे। संयोगवश किसी मृतक का एक कफ़न मिल गया। युवराज इसी कफ़न से अंग ढाँककर भिक्षा माँगने जाया करते थे।

जिसकी खोज में युवराज वर्षों से लगे थे, जिसके लिये विशाल राजप्रासाद तथा सुखवैभव को ठोकर मार दी थी और जिसके लिये कष्ट सहते-सहते शरीर सुखा दिया था—वह एक दिन अचानक युवराज को एक वटवृक्ष के नीचे मिल गया। युवराज का कपाल नवाभा से दमक उठा। उन्हें शान्ति मिल गयी। तब से युवराज का नाम बुद्ध तथा जिस वृक्ष के नीचे उन्हें शान्ति मिली थी, उस वृक्ष का नाम बौद्धि वृक्ष पड़ा। गया से थोड़ी दूर पर यह वृक्ष अब भी वर्त्तमान है। हजारों यात्री प्रति वर्ष दर्शन करने आते हैं।

भगवान् बुद्ध ने अब पर्य्यटन आरम्भ किया। "अहिंसा परमो धर्मः" का उपदेश देते हुए बड़े-बड़े नगरों तथा सम्पूर्ण देश में पर्यटन कर आये। उस समय देश में धामिक अशान्ति थी, इसलिये कुछ ही काल में भगवान् बुद्ध के सहस्रों अनुयायी हो गये। मगध के महाराज अशोक ने तो दूसरे दूसरे देशों में भी धर्मप्रचारक मंडलियाँ भेजकर बौद्ध धर्म का खूब ही प्रचार किया।

महाराज शुद्धोदन ने बुद्ध को निमंत्रण भेजा और स्वयं उन्हें भी यह प्रेरणा हुई कि वे एक बार कपिलवस्तु जायँ। पतिवियोगिनी महासती गोपा की मानसिक तपश्चर्या ने भगवान् बुद्ध का आसन डिगा दिया। वे कपिलवस्तु जा पहुँचे। महाराज शुद्धोदन ने राजवधू गोपा को पतिदर्शन कर आने की बात कही। पर वह न डिगी। उसे विश्वास था कि उसका तप उन्हें

अवश्य यहीं खींच लायेगा। हुआ भी ऐसा ही। जब भगवान् बुद्ध भवन पधारे, गोपा ने अपने लाड़ले लाल राहुल को उनके चरणों पर रखकर अभय वरदान प्राप्त किया। सारा राजपरिवार युवराज का अनुयायी हो गया।

इस प्रकार ४५ वर्ष तक लगातार धर्मप्रचार कर ८० वर्ष की अवस्था में (ईसा से ५३४ वर्ष पूर्व) काशी और पटना के बीच कुशीनगर ग्राम में एक सालवृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध ने देह-विसर्जन किया। समाधिस्थ होने के पूर्व वे महाराज शुद्धोदन का अन्तिम संस्कार करने राजप्रासाद में गये। महाराज उनसे धर्मोपदेश सुनते सुनते परलोक सिधारे। उस समय भगवान् ने अपने अनुयायियों तथा श्रमणों को चार बातों का उपदेश दिया। वे ये हैं:—

(१) इन्द्रियों का निरोध करने से निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होता है।

(२) आत्मशोधन करते हुए पापों से बचना और पुण्य करना चाहिये।

(३) जल से कीचड़ होता है और जल से ही वह धोया जाता है। इसी तरह मन से पाप होने पर मन के द्वारा ही पाप धोया भी जाता है।

(४) छाया जिस प्रकार मनुष्य का त्याग नहीं करती उसी प्रकार जिसके विचार, वाणी और कर्म पवित्र हैं, उसकी सुख-शांति अटल रहती है।

भगवान् बुद्ध जन्मान्तर और मुक्ति को मानते थे और अहिंसा, अस्तेय, सूनृत, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—इन पाँच साधनों को मुक्ति का उपाय बताते थे।

प्रश्न

१—गौतम बुद्ध ने अपना घर क्यों छोड़ा ?

२—उनकी क्या शिक्षा थी ?

३—संसार में उनके धर्म का प्रचार कैसे हुआ ?

१९—सदाचार

स्मृतिग्रन्थों में यद्यपि आचार शब्द का प्रयोग विशेषतया खान-पान की शुद्धि एवं वल्कल आदि के धारण में किया गया है; परन्तु आजकल यह शब्द परम व्यापक हो गया है। शील और सदाचार में अब विशेष भेद नहीं है, शील की व्याख्या करते हुए हारीत—मृदुता, मित्रता, प्रियवादिता, कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्य, प्रशान्ति आदि को शील का स्वरूप मानते हैं। मनुस्मृति के टीकाकार गोविन्दराज राग और द्वेष के परित्याग को ही शील मानते हैं। सदाचार में शील के इन गुणों की वृद्धि के साथ शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

जिस रहन-सहन और व्यवहार के करने से एक व्यक्ति मानवसमाज में सज्जन के शब्द से अलंकृत होता है, संक्षिप्त रूप में उसका नाम ही सदाचार है। जो सदाचारी होता है, मानवजीवन में उसकी सब तरह से उन्नति होती है और वह सब लोगों का पूजनीय एवं श्रद्धा का पात्र बन जाता है। दुराचारी पुरुषों से सब घृणा करते हैं और न कोई उनका विश्वास करता है।

सदाचारी पुरुष अपने कार्यों से किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता और जहाँ तक हो सके वहाँ तक वह सब की सहायता करता है। जिस जाति एवं देश में ऐसे पुरुषों की अधिकता

होती है, वे जातियाँ एवं देश जगत् में समुन्नत और सभ्य के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। विशेष ज्ञान अथवा प्रचुर मात्रा में धन के कमाने से ही एक मनुष्य सदाचारी नहीं कहला सकता। सदाचारी वह होता है, जो अपनी उत्कृष्ट विद्या और अतुल धन का सदुपयोग करता है। दुराचारियों की प्रत्येक शक्ति दूसरों को सताने में काम आती है और अन्त में वे स्वयं भी उससे विनष्ट हो जाते हैं। परन्तु सदाचारी अपने सामर्थ्य को सदा भले कामों में ही लगाते हैं और अपने सुख एवं शान्ति के साथ दूसरों को भी आनन्द देते हैं।

आजकल शिक्षा का विशेष प्रचार होने पर भी जो अभी मानवसमाज में विशृङ्खलता है, उसका प्रधान कारण यही है कि काम के समय सब अपनी अच्छी शिक्षाओं को भूल जाते हैं। परन्तु सदाचारी ऐसा नहीं करते। वे कभी भी ऐसा काम नहीं करते, जिससे उनके नाम या उनके कुल पर किसी तरह का कलंक लग सके और वे काम के समय ही अपने सद्गुणों का परिचय दिया करते हैं। वे अपने कामों को नाम कमाने के लिए नहीं करते; परन्तु यह उनका एक स्वाभाविक गुण होता है कि वे परोपकारी एंव सर्वजन-प्रिय होते हैं।

अपने कर्तव्य को समझ कर बुरी संगति एवं बुरे व्यसनों को छोड़ कर प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो सकता है। यह मनुष्य की कमजोरी है कि वह यह समझता है कि बुरी बातों का सहारा पाये बिना अथवा झूठ की सहायता लिये बिना उसका काम सिद्ध नहीं होगा। जो सत्यव्यवहार में दृढ़ भक्ति रखते हैं उनके कामों को प्रकृति अपने आप सिद्ध कर देती है। सदाचारी के विनय से सब प्रसन्न रहते हैं और शत्रु भी उसके मित्र बन जाते हैं। आवश्यकता यही है कि हम सदाचारी बनने का प्रयत्न करें और अपने कर्तव्य को समझें।

आह्निक

सदाचार पालन की तरह आह्निक कर्म भी जीवन में एक परम आवश्यक अंग है। जीवन दैनिक घटनाओं के आधार पर ही उन्नत अथवा अवनत होता है। जो पुरुष अपने आह्निक कर्मों पर ध्यान नहीं देते, वे अन्त में बहुत पछताते हैं। हमारे तत्त्ववेत्ता पूर्वजों ने हमारे आह्निक कर्मों की ऐसी व्यवस्था की है कि प्रति दिन उनका पालन करने के बाद प्रतिक्षण जटिल होते हुए जीवन की यात्रा में फिर विशेष असुविधा नहीं होती। आज-कल जो हमारे समाज में चित्त की अशान्ति, रोग एवं तामसिक विचारों का परम प्राबल्य हो रहा है और मूर्खता का साम्राज प्रायः प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, उसमें प्रधान हेतु यही है कि हम अपने आह्निक कर्मों की भयंकर अपेक्षा कर रहे हैं।

आह्निक कर्मों का पूर्व विवरण अत्यन्त विस्तृत है; पर साधरणतया इतना समझ लेना ही पर्याप्त होगा कि ब्राह्म मुहूर्त में उठना, स्नान,संध्या, हवन स्वाध्याय, बलि वैश्वदेव, अतिथिसत्कार आदि दैनिक कर्मों की उपेक्षा से हमारी जितनी क्षति हो रही है, वह किसी भी अन्य कार्य से पूर्ण नहीं हो सकती।

ब्राह्म मुहूर्त में उठने के लाभों पर विशेष लिखना अनावश्यक है। उस समय की वायु के सेवन से जो स्फूर्ति आती है, शान्त मस्तिष्क में जिन विचारों का अभ्युदय होता है, उससे शरीर की जो शुद्धि होती है और जीवन के जिस अमूल्य समय की, जो तन्द्रा में व्यर्थ नष्ट होता, प्राप्ति होती है—वह संसार में अद्वितीय है। इसी तरह स्नान संध्या के द्वारा प्राणायामादि से जिस आयु की वृद्धि होती है, वह लाख तरह के अन्य सिग्रेट,

चाय, सिनेमा और साबुन या पाउडरों के उपयोग से एक क्षण के लिये भी नहीं हो सकती। प्रतिक्षण दौड़ता हुआ आजकल का जीवन एक क्षण के लिए भी समाधिसुख का अनुभव न करने के कारण ही परम विचलित हो रहा है।

इसी तरह निरर्थक साहित्य को पढ़ने की अपेक्षा यदि प्रतिदिन शास्त्रों का स्वाध्याय होता तो जीवन में छिछलापन नहीं आता।

यह अतिथिसत्कार की उपेक्षा आदि का ही कुपरिणाम है कि हम में जातीयता, राष्ट्रीयता अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता का अभाव हो रहा है। यदि हम प्रत्येक भाई का सत्कार करते तो हम में भ्रातृभाव की वृद्धि होती। इत्यादि एक दो नहीं, हजारों ऐसे गुण हैं जिनकी रक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने प्राचीन स्मृतिग्रन्थों का अध्ययन कर अपने कर्तव्य कर्म का ज्ञान प्राप्त करें और अपने जीवन को सुखी बनावें।

देवार्चन

सदाचार तथा आह्निक कर्म के साथ तीसरा हमारा कर्तव्य है कि हम अपना कुछ समय देवार्चन में भी अवश्य व्यतीत किया करें। देवार्चन हमारा प्रधान कर्तव्य है। मनुष्य का जहाँ यह कर्तव्य है कि वह अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रखे और अपने दृढ़ अध्यवसाय एवं सत्कर्मों से अपनी उन्नति करे, वहाँ उसके साथ ही यह उसका धर्म है कि वह इस बात को कभी न भूले कि उसकी शक्तियों को विकसित करने में उसके परम पिता का ही मुख्य हाथ है। भगवत्कृपा का ही यह फल है कि हम इस सुन्दर सृष्टि में उस अनुपम सौन्दर्य का अनुभव कर रहे हैं। वह प्रभु यद्यपि हमारी पूजा की अपेक्षा नहीं रखता; पर यह

हमारा कर्तव्य है कि हम अपने उस विधाता से अपने सम्बन्ध को विच्छिन्न न करें। हमारा उससे जितना ही अधिक सम्बन्ध होगा, उतना ही हमारा अधिक कल्याण है। यह निश्चित है कि यह सर्वव्यापक है और हमारा उससे एक अनवच्छिन्न सम्बन्ध है; पर स्मरण, ध्यान एवं अर्चन आदि के बिना वह सम्बन्ध स्फुट नहीं होता। विकास के लिये किसी न किसी क्रिया की आवश्यकता अवश्य है और वह क्रिया देवार्चन में अत्यन्त प्राचीन काल से विशेष सफल और आनन्दमय प्रकटित होती रही है। देवार्चन में जिस प्रेम, श्रद्धा, संलग्नता और शान्ति का अनुभव होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। विभिन्न देवों के उपासक बनकर परस्पर कलह करना देवार्चन नहीं है। सब देवों में उस एक प्रभु की ज्योति को मान कर और उसके ही विभिन्न स्वरूपों को देवरूप समझ कर भगवान् शंकर, विष्णु, माता भगवती आदि की जो पूजा करते हैं, वह सब से अधिक सुन्दर पूजा है। पूजा में नाना उपहारों की अपेक्षा भाव और भक्ति प्रधान है।

देवार्चन से हृदय एवं मस्तिष्क में जो एक उल्लास और विश्वास उत्पन्न होता है, वह विद्या, बुद्धि और शक्ति के उपार्जन में परम सहायक होता है। भारत में इस देवार्चन के प्रताप से जिन मधुर स्तोत्रों की रचना हुई है, वह जगत् के साहित्य में एक अनुपम साहित्य है। इस अर्चन में मनुष्य का अपने इष्ट देव से अविकल सम्बन्ध हो जाता है और फिर वे परस्पर संभाषण के अधिकारी हो जाते हैं।

छात्रों को चाहिये कि वे इन बातों पर अपने गुरुजनों से पूर्ण शिक्षा को अवश्य प्राप्त करें और व्यवहार रूप में इनका पालन कर इनके आनन्द का अनुभव करें। पठन की अपेक्षा

यह विषय विशेषतया आचरण के द्वारा अनुभव करने योग्य है।

प्राचीन भारत की एक झलक

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।

बात आजकल की नहीं, सौ दो सौ की भी नहीं, उसे हुए हजारों वर्ष बीत गये, उस समय राजा रघु का राज्य था। वे ससागरा पृथ्वी के पति थे। साकेत नगरी (प्राचीन अयोध्या) उनकी राजधानी थी। सत्पात्रों को दे डालने के लिये ही वे धनोपार्ज्जन करते थे, प्रजा के काम में लगा देने के लिए ही वे कर लेते थे, निर्बलों को प्रबलों के उत्पीड़न से बचाने के लिए ही वे धनुर्बाण धारण करते थे। विद्वानों का प्यार वे अपने प्राणों से भी अधिक करते थे, उन्हें वे देवता समझते थे, उनके पैर तक अपने हाथों से धोते थे। यह मजाल न थी कि अरण्यवासी विद्वानों के लगाये हुए छोटे से पौधे की एक टहनी भी कोई तोड़ ले, उनके खेतों से साँवाँ की एक बाल भी कोई चुरा ले जाय।

बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी विद्वान बड़ी-बड़ी बस्तियों में, उस समय न रहते थे। बस्ती से कुछ दूर, जंगल में, वे अपनी पर्णशालाएँ बनाते थे। साँवाँ, कोदो और कँगनी की वे खेती करते थे। गायें भी वे पालते थे। उनके पास सैकड़ों नहीं, हजारों विद्यार्थी रहते थे। वे उन्हें विद्या का भी दान देते थे और भोजन-वस्त्र का भी। अन्याय, उत्पीड़न और चौरकर्म का कहीं नाम न था। यज्ञ के पावन धूम से आसपास का प्रदेश सुरभित रहता था। वेदघोष से दिशाएँ गुञ्जायमान रहती थीं। आचार्यों की आज्ञाएँ पालन

करने में चक्रवर्ती राजा तक अपनी कृतार्थता मानते थे। ऐसे समय के भारत की एक झलक देखिये।

राजा रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति विश्वजित् नामक यज्ञ में दे डाली है। पास कुछ भी नहीं रखा। पानी पीने के लिए पीतल का लोटा भी नहीं रह गया। रह क्या गया है? मिट्टी ही का सकोरा, मिट्टी ही की हाँड़ी, मिट्टी ही की थाली! इस प्रकार सर्वस्व दान देकर आप रिक्तहस्त हो गये हैं।

इसी समय, वरतन्तु नाम के एक बड़े तपस्वी और बड़े विद्वान् महात्मा, राजा रघु के राज में तपश्चर्या और अध्यापन का काम करते हैं। आश्रम उनका जंगल में है। खेतपात भी उनके वहीं हैं! अनेक ब्रह्मचारी आपके आश्रम में रहते और अध्ययन करते हैं। वरतन्तु ऋषि की विद्वत्ता का यह हाल है कि वे चौदहों विद्याओं के निधान हैं। तप उनका इतना बढ़ा चढ़ा है कि उनके डर से इन्द्र का आसन डिग रहा है। कहीं इतना घोर तप करके ये मेरा इन्द्रासन तो नहीं छीन लेना चाहते! इस डर से सुरेन्द्र को अप्सराओं की शरण लेनी पड़ी; पर वरतन्तुजी के सामने उनकी एक भी न चली। वे अपना सा मुँह लेकर लौट गयीं। इन्द्र का वह भय सर्वथा निर्मूल था। इन्द्रासन पाने की इच्छा अल्प पुण्यात्माओं ही को हुआ करती है। वरतन्तुजी ऐसे पुरुषों को नहीं!

वरतन्तु के आश्रम में कौत्स नाम का एक विद्यार्थी है। जब उसका अध्ययन समाप्त हो गया और वह पूर्ण विद्वान् होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य हुआ तब वरतन्तु ने उसे घर जाने की आज्ञा दी। कौत्स ने भक्तिभाव के आवेश में आकर प्रार्थना की—

"आचार्य्य! मुझ से कुछ गुरुदक्षिणा लीजिये। आपकी कृपा

से मैं मूर्ख से पण्डित हो गया। अतएव मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं पत्रपुष्प रूपी थोड़ी सी पूजा आपकी करूँ।"

वरतन्तु—"वत्स! तुमने मेरे आश्रम में इतने दिन तक रहकर मेरी जो सेवा-शुश्रूषा की है, उसी को मैं सब से बड़ी गुरुदक्षिणा समझता हूँ। वही क्या कम है?"

कौत्स—"नहीं आचार्य्य! कुछ आज्ञा तो अवश्य ही दीजिये, कृपा कीजिये। मेरा जी नहीं मानता।"

वरतन्तु—"कौत्स! दक्षिणा की अपेक्षा शिष्य की भक्ति मुझे विशेष सन्तोषदायिनी है। उसके मुकाबले में दक्षिणा कोई चीज़ नहीं। तुमसे मैं कुछ नहीं चाहता।"

कौत्स—"महाराज! आपको मेरा अनुरोध मानना ही पड़ेगा, मुझे अपना सेवक समझकर कुछ मुँह से जरूर कहिये।"

शिष्य के इस हठ को देखकर आचार्य्य का महासागर सदृश शान्त चित्त भी क्षुब्ध हो उठा—

उन्हें रोष हो आया, उन्हें कौत्स की गरीबी का कुछ भी खयाल न रहा, वे बोले—"अच्छी बात है, तू गुरुदक्षिणा दिये विना जो घर नहीं जाना चाहता तो अब देकर ही जाना। मैंने तुझे चौदह विद्याएँ पढ़ायी हैं। एतएव एक एक विद्या के बदले एक एक करोड़ रुपया मुझे ला दे।"

कौत्स इस आज्ञा को सुन कर जरा भी नहीं घबराया। उसने—"जो आज्ञा"—कहकर गुरु को प्रमाण किया और वहाँ से चल दिया। जिस ब्राह्मणकुमार के पास कौपीन, कमण्डलु और पलाशदण्ड के सिवा और कुछ नहीं था, उसने चौदह करोड़ रुपये अपने विद्यागुरु को देने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

जरा इस घटना पर ध्यान दीजिये। वरतन्तु ने कौत्स को बरसों पढ़ाया—कौन जाने बीस वर्ष पढ़ाया, या पचीस वर्ष,

या इससे भी अधिक—पढ़ाया ही नहीं, अपने घर रखा, भोजन वस्त्र भी दिया और बीमार होने पर सुताधिक स्नेह से उसकी रक्षा भी की और इसके बदले में आपने पाया क्या ? केवल शिष्य-भक्ति ! उसी को आपने फीस समझा, उसी को बोर्डिंग का खर्च, उसी को सब कुछ यह तो हुआ आचार्य्य का हाल। अब शिष्य को देखिये। वह भक्तिदान से सन्तुष्ट नहीं वह यथाशक्ति कुछ और भी देना चाहता है। बिना दक्षिणा के आचार्य्य के आश्रम से घर जाने के लिये उसका पैर ही नहीं उठता, और जब उससे चौदह करोड़ माँगा जाता है तब वह अपनी अकिञ्चनता को ज़रा भी ख़याल न करके प्रसन्नतापूर्वक कहता है—"बहुत अच्छा, आचार्य्य ! चौदह करोड़ ही दूँगा।" ऐसी अवस्था में कौन अधिक प्रशंसनीय है—गुरु या शिष्य ? इसका उत्तर देना कठिन है। गुरु भक्तिभाव ही से खुश हैं, चेले के पास चौदह कौड़ियाँ भी नहीं; पर गुरु की आज्ञा के अनुसार चौदह करोड़ देने की वह प्रतिज्ञा करता है। इस दृश्य का मुक़ाबला वर्तमान समय के विद्यालयसम्बन्धी दृश्य से कीजिये। आकाश-पाताल का अन्तर है। है या नहीं ? इसी से कहते हैं कि—भारत ! तुम कुछ के कुछ हो गये हो।

अच्छा, इस दृश्य को आप देख चुके। अब इसके बाद का एक और दृश्य देखिये। उसमें आपको पूर्वोक्त वरतन्तु के आश्रम की झलक के सिवा और भी कुछ देखने को मिलेगा। साथ ही आपको यह भी देखने को मिलेगा कि भारत के प्राचीन चक्रवर्ती राजा ऐसे आश्रमों की कहाँ तक ख़बर रखते थे। इस दृश्य के दिखाने का पुण्य महाकवि कालिदास को है। अपने रघुवंश में वे जो कुछ लिख गये हैं, उसी की बदौलत हमें यह दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

चौदह करोड़ दे डालना, ऐसे वैसे आदमी का काम नहीं। राजाओं के लिये इतना बड़ा दान देना कठिन काम है। यही सोचकर कौत्स ने राजा रघु से याचना करने का निश्चय किया। राजा रघु की जो स्थिति उस समय थी, उसका उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है। परन्तु कौत्स को उसकी कुछ भी खबर न थी। अतएव वह गुरुदक्षिणा के लिये धन प्राप्त करने के इरादे से रघु के पास पहुँचा।

जिस रघु के खज़ाने में, कुछ समय पहले, सोने के ढेर के ढेर भरे हुए थे, उसके खाने-पीने के पात्र भी सोने ही के होंगे, इसमें क्या सन्देह हो सकता? परन्तु वह समय सुवर्णसञ्चय का न था। वह तो सारा का सारा दिया जा चुका था। अब रघु के पास पात्र थे मिट्टी के। वे यद्यपि चमकदार न थे, तथापि रघु का शरीर उसके अत्युज्ज्वल यश से जरूर खूब चमक रहा था। उसके शील स्वभाव का क्या कहना है! अतिथियों का,—विशेष करके विद्वान् अतिथियों का—सत्कार करना वह अपना बहुत बड़ा कर्त्तव्य समझता था। इस कारण जब उसने उस वेदशास्त्र सम्पन्न कौत्स के आने की खबर सुनी तब उन्हीं मिट्टी के पात्रों में अर्घ्य और पूजा की सामग्री लेकर वह उठ खड़ा हुआ।

आजकल के राजा कहलाये जानेवाले लोगों की तरह रघु अपने आसन पर डटा नहीं बैठा रहा। कौत्स को देखते ही वह उठा। उठा ही नहीं, उठकर वह कुछ दूर तक गया भी और उस तपोधन अतिथि को साथ लिवा लाया। रघु यद्यपि, उस समय, सुवर्ण सम्पत्ति से धनवान् न था, तथापि मानरूपी धन को भी जो धन समझते हैं, उनमें वह सब से चढ़ बढ़ कर था। महा-मानधनी होने पर भी रघु ने उस तपोधन ब्राह्मण की विधि-

पूर्वक पूजा की। विद्या और तप के धन को उसने और सब धनों से बढ़कर समझा। चक्रवर्ती राजा होने पर भी रघु को अभ्यागत के आदरातिथ्य की क्रिया अच्छी तरह मालूम थी। अपने इस क्रियाज्ञान का यथेष्ट उपयोग करके रघु ने कौत्स को प्रसन्न किया। जब वह स्वस्थ होकर आसन पर बैठ गया तब रघु ने नम्रता पूर्वक, भृकुटी या हाथ के इशारे से नहीं; किन्तु वाणी द्वारा कुशल समाचार पूछना आरम्भ किया। इतना ही नहीं, राजा ने हाथ भी जोड़ने की जरूरत समझी। विद्वान् और तपस्वी की महिमा तो देखिये।

"हे कुशाग्रबुद्धे! कहिए, आपके गुरु तो कुशलपूर्वक हैं? आपके विद्यागुरु महर्षि वरतन्तु की तपस्या का क्या हाल है? उनके तपश्चरण का बाधक कोई विघ्न तो उपस्थित नहीं होता।"

"आपके आश्रम के पेड़-पौधे तो हरे भरे हैं? सूखे तो नहीं? आँधी और तूफान आदि से उन्हें हानि तो नहीं पहुँची?"

"आपके तीर्थजलों की क्या दशा है? उनमें कोई खराबी तो नहीं? वे सूख तो नहीं गये? पशु इन्हें गँदला तो नहीं करते? इन तीर्थजलों को—इन तड़ागों और बावलियों को—मैं आपके बड़े काम का समझता हूँ। इन्हीं का जल आपके स्नानादि के नित्य काम में आता है। पितरों का तर्पण भी आप इसी से करते हैं। इन्हीं के किनारे रेत पर आप अपने खेतों की उपज का षष्ठांश, राजा के लिये, रख छोड़ते हैं।" यह वह समय था जब न कोई तहसीलदार था, न रेविन्यू मनीआर्डर थे, न लगान वसूल करने के लिये कोई क़ानून था। न किसी पर नालिशें होती थीं, न बेदखली थी, न कुर्की। राज-कर उपज के रूप में दिया जाता था—सो भी छः मन पीछे एक मन। झूठ, धोखेबाजी और

चौरकर्म्म का कहीं नाम न था। जिसे जितना कर देना होता था, वह उतना किसी पास के कुएँ, तालाब या बावली के किनारे चुपचाप रख देता था। समय पर राज-कर्मचारी उसे उठा ले जाते थे। भारत का यह प्राचीन दृश्य किस सहृदय के कण्ठ को गद्गद और नेत्रों को साश्रु न करेगा?

इन ऋषियों के उदर-निर्वाह की साधन-सामग्री को तो देखिये। वे क्या थे—मक्का, कँगनी और साँवाँ! पर विद्वत्ता उनकी ऐसी थी कि साकेत के चक्रवर्ती राजा उनके पैर अपने हाथ से धोते थे! उनकी तपस्या का यह हाल था कि सुरराज इन्द्र भी उसे देखकर कम्पित होते थे। सादा जीवन और उच्च विचार का ऐसा उत्कृष्ट नमूना क्या कभी किसी देश की किसी जाति में और कहीं पाया जा सकता है?

आप हमारे परम पूज्य हैं। हाँ, भला यह तो कहिये कि आपने जो मुझपर यह कृपा की है, वह आपने अपने ही मन से की है या गुरु की आज्ञा से, वन से इतनी दूर मेरे पास आने का कारण क्या?

इस विस्तृत कुशल-प्रश्नावली के समाप्त होने पर कौत्स ने कहा—

"राजन्! हमारे आश्रम में सब प्रकार कुशल है। हमारे तपश्चरण में कोई विघ्न नहीं, आश्रम-पादप खूब अच्छी दशा में हैं। जल की कमी नहीं, अन्न काफी है, पश्वादिकों का कोई उपद्रव नहीं। आपके राजा होते, भला, हम लोगों को कभी स्वप्न में भी कष्ट हो सकता है! सूर्य के मध्य आकाश में स्थित रहते, मजाल है जो रात्रिसम्भूत अन्धकार अपना मुँह दिखाने का हौसला करे! रहा मेरे आने का कारण, सो मैं गुरु के लिये आपसे कुछ माँगने आया था; परन्तु मैं देर से आया,

आपसे माँगने का समय जाता रहा। आपके ये मिट्टी के पात्र इसके प्रमाण हैं। आप प्रसन्न रहें, अब मैं आपसे इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहता, मैं तो मनुष्य हूँ, गुरु की कृपा से चार अक्षर मैंने पढ़े भी हैं, अतएव ऐसे समय में याचना मुझे मुनासिब नहीं, सारे संसार को जल-वृष्टि से आप्लावित करके शरत्काल को प्राप्त होने वाले रिक्त मेघों को पतंगयोनि में उत्पन्न चातक भी अपनी याचनाओं से तंग नहीं करते।"

राजा ने उत्तर दिया—"अच्छा, बतलाइये तो, कौनसी चीज़ आप अपने गुरु को देना चाहते हैं और कितनी देना चाहते हैं?"

इस पर कौत्स ने सब हाल कहा। सुन कर राजा बोला—"कुछ चिन्ता नहीं। आप दो तीन दिन मेरी अग्निहोत्रशाला में ठहरिये। मैं आपकी अर्थसिद्धि के लिये चेष्टा करूँगा। मेरे पास से आपका विफलमनोरथ जाना मेरे लिये बड़े ही कलंक की बात होगी। यह मैं नहीं चाहता—यह मुझे असह्य होगा।"

रघु के खज़ाने में कौड़ी न थी। चौदह करोड़ रुपया कहाँ से आवे? राजा धर्म संकट में पड़ा। अन्त में उसने कुबेर पर चढ़ाई करके उतना द्रव्य प्राप्त करने का निश्चय किया। उसने अपना शस्त्रास्त्रपूर्ण रथ सजाया। प्रातःकाल यात्रा करने के इरादे से रात को वह उसी रथ पर सोया; पर उसे प्रस्थान करने की जरूरत नहीं पड़ी, रात ही को उसका खज़ाना असर्फ़ियों से अकस्मात् भर गया, अत एव उसने वह सब धन कौत्स के सामने लाकर हाजिर कर दिया। वह चौदह करोड़ से कहीं अधिक था। सवाल था सिर्फ़ चौदह करोड़ के लिये; परन्तु उतना ही देना रघु के लिये कोई विशेष उदारता की बात न थी,

इससे राजा वह सारा का सारा धन कौत्स को देने लगा; परन्तु वह मतलब से अधिक क्यों लेता ! उसने गिन कर चौदह करोड़ ले लिया । बाकी सब वहीं पड़ा रहा । अब बतलाइये, उन दोनों में से किसे अधिक प्रशंसा का पात्र समझना चाहिये—दाता रघु को या याचक कौत्स को ? रघु की राजधानी साकेत नगरी के निवासियों ने तो उन दोनों को बराबर एक ही सा अभिनन्दनीय समझा—

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ
द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥

प्रश्न

१—कौत्स और वरतन्तु के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२—रघु ने कौत्स को धन क्यों दिया ?

३—इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?

उर्दू शब्दों के अर्थ

शब्द	अर्थ
असर	= प्रभाव
आज़माना	= परीक्षा करना
इकलौता	= एकमात्र
उम्मेदवार	= प्रार्थी
ओहदा	= पद
काफ़ी	= पर्याप्त
क़िला	= दुर्ग
क़िस्मत	= भाग्य
क़ैद	= प्रतिबन्ध
क़ैदी	= बन्दी
कोशिश	= यत्न
ख़िदमत	= सेवा
ख़ुद	= स्वयं
ग़ुलाम	= दास
चालाकी	= चतुराई
ज़ख़्मी होना	= घायल
जमा होना	= एकत्र होना
ज़रूरी	= आवश्यक
ज़िन्दगी	= जीवन
तकलीफ़	= कष्ट
तय, तै करना	= निर्णय करना
तरह	= प्रकार
तेज़	= तीव्र
तैयार	= प्रस्तुत
दुनिया	= संसार
नसीब	= प्रारब्ध
नेकनामी	= सुयश
पातसाह	= इसका शुद्ध रूप पातशाह है जिसका अर्थ राजा होता है
फ़रमाना	= कहना
फ़ैसला	= निर्णय
बदन	= शरीर
मतलब	= अर्थ
मुक़ाबला	= बराबरी
मौजूद	= उपस्थित
यकायक	= सहसा
लापरवाही	= प्रमाद
सताना	= कष्ट देना
सनद	= प्रमाणपत्र
सफ़ेद	= श्वेत
साल	= वर्ष
हद, हद्द	= सीमा
हाक़िम	= शासक
हाल	= समाचार
हालत	= स्थिति
हाज़िर	= उपस्थित
हुज़ूर	= श्रीमान्
हौसला	= साहस

